नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 5 अंक 4
मई 2003 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

मई दिवस का सन्देश

मई दिवस अनुष्ठान नहीं, संकल्पों को फौलादी बनाने का दिन है!

एक बार फिर मुक्ति का परचम उठाओ! पूंजी की बर्बर सत्ता के खिलाफ फैसलाकुन लड़ाई की तैयारी में जुट जाओ!!

इक्कीसवीं सदी को मज़दूर क्रान्ति की मुकम्मल जीत की सदी बनाओ!!!

• सम्पादक मण्डल

मज़दूर वर्ग के लिए सबसे बुरी बातों में से एक शायद यह है कि मई दिवस को आज एक अनुष्ठान बना दिया गया है। यह मई दिवस के महान शहीदों का अपमान है। मई दिवस मज़दूरों के मक्कार, फरेबी, नकली नेताओं के लिए महज झण्डा फहराने, जुलूस निकालने, भाषण देने की एक रस्म हो सकता है, लेकिन वास्तव में यह उन शहीदों की कुर्बानियों की याददिहानी का एक मौका है, जिन्होंने अपनी जिन्दगी देकर पूरी दुनिया के मज़दूरों को यह सन्देश दिया था कि उन्हें अलग-अलग पेशों और कारखानों में बंटे- बिखरे रहकर महज अपनी पगार बढ़ाने के लिए लड़ने के बजाय एक वर्ग के रूप में एकजुट होकर अपनी राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा। काम के घण्टे कम करने की मांग उस समय की सर्वोपरि राजनीतिक मांग थी।

मई दिवस के शहीदों की कुर्बानी बेकार नहीं गयी। जल्दी ही काम के घण्टों पर संघर्ष की लहर अमेरिका से यूरोप तक और फिर पूरी दुनिया में फैल गयी। पूंजीपति वर्ग की सरकारें विकसित पूंजीवादी देशों से लेकर उपनिवेशों तक में आठ घण्टे के कार्यदिवस का कानून बनाने के लिए बाध्य हो गयीं। यही नहीं, मज़दूरों की जुझारू वर्ग चेतना से आतंकित दुनिया के अधिकांश देशों की पूंजीवादी सत्ताएं श्रम कानून बनाकर किसी न किसी हद तक मज़दूरों को चिकित्सा, आवास आदि बुनियादी सुविधाएं, तथा यूनियन बनाने का अधिकार देने, न्यूनतम मजदूरी तय करने और जब मर्जी रोजगार छीन लेने जैसी मालिकों की निरंकुश हरकतों पर बंदिशें लगाने के लिए मजबूर हो गयीं। इसीलिए यह कहा जाता है कि मई दिवस दुनिया के मेहनतकशों के राजनीतिक चेतना के युग में प्रवेश करने का प्रतीक दिवस है। मई, 1886 ने यह संकेत दे दिया था कि बीसवीं सदी में श्रम की ताकत संगठित होकर पूंजी की सत्ता को झकझोर देनेवाले विकट, भूकम्पकारी तूफानों को जन्म देने वाली है।

यदि इस बुनियादी बात को ही भुला दिया जाये तो फिर मई दिवस मनाने का भला क्या मतलब रह जाता है? लेकिन सच तो यही है कि आज इस बुनियादी बात को ही भुला दिया गया है। चुनावी पार्टियों के पिछलग्गू वे तमाम ट्रेड यूनियनबाज घाघ मई दिवस का परचम लहरा रहे हैं। जिनका काम ही मज़दूरों को महज दुवन्नी-चवन्नी की लड़ाई में उलझाये रखकर अपना उल्लू सीधा करना है, अपने आकाओं की चुनावी गोट लाल करना है और एक धोखे की टट्टी के रूप में इस व्यवस्था की हिफाजत करना है। पूंजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी (सरकार) में मज़दूरों का महकमा देखने वाला मुलाजिम (श्रम मंत्री) लगातार मजदूरों को ज्यादा से ज्यादा निचोड़ने और उजरती गुलामी की डंडा-बेड़ियों को मजबूत करने के कानूनी बन्दोबस्त करता रहता है और मई दिवस के दिन देश के मज़दूरों के नाम सन्देश जारी करता है। और हद तो तब हो जाती है जब पता चलता है कि कई एक कारखानों के मालिकान भी मई दिवस के दिन मजदूरों को लड्डू बंटवाते हैं या यूनियन-मैनेजमेण्ट मिलकर प्रीतिभोज का आयोजन करते हैं। मई दिवस के शहीदों का भला इससे बढ़कर भी कोई अपमान हो सकता है?

इससे अधिक अफसोस की बात क्या हो सकती है कि इतिहास के जिस दौर में, विगत एक शताब्दी से भी अधिक समय के दौरान मजदूर वर्ग की राजनीतिक लड़ाई सबसे अधिक कमजोर अवस्था में दीख रही है, ऐन उसी दौर में उस महान मई दिवस के अर्थ और महत्त्व को सबसे अधिक विकृत -विघटित कर दिया गया है। मज़दूर वर्ग को अर्थवाद, ट्रेडयूनियनवाद और संसदवाद की चौहद्दी से बाहर निकालकर, व्यापक मजदूर एकता की जमीन पर राजनीतिक संघर्षों को संगठित करने की शुरुआत करके ही आज हम मई दिवस की गरिमा वास्तव में बहाल कर सकते हैं और सही मायने में मई दिवस के महान शहीदों की शानदार परम्परा के सच्चे वारिस बन सकते हैं।

•

आम मजदूर साथियों के लिए यह बेहद जरूरी है कि वे राजनीतिक संघर्ष और आर्थिक संघर्ष के बीच के अन्तर को भलीभांति समझ लें। तभी उन्हें मई दिवस के ऐतिहासिक महत्व का वास्तव में भान हो सकेगा। किसी कारख़ाना या उद्योग विशेष में काम करते हुए मज़दूर अपनी पगार, पेंशन, भत्ते आदि को लेकर आर्थिक संघर्ष करते हैं और इस प्रक्रिया में उन्हें अपनी संगठित शक्ति का अहसास होता है तथा वे लड़ना सीखते हैं। लेकिन अलग-अलग उद्योगों या कारखानों के मज़दूर अपने-अपने मालिकों के खिलाफ अलग-अलग आर्थिक लड़ाइयां लड़ते हैं। उनकी यह लड़ाई एक समूचे वर्ग के रूप में, समूचे पूंजीपति वर्ग के खिलाफ नहीं होती। लेकिन साथ ही, वे कुछ ऐसी रोज़मर्रे की लड़ाइयां भी लड़ना शुरू करते हैं जो समूचे मज़दूर वर्ग की साझा मांगों को लेकर होती हैं- जैसे आवास, स्वास्थ्य आदि सुविधाओं की मांग, पक्की नौकरी की गारण्टी या ठेका प्रथा की समाप्ति की मांग (सभी मजदूरों के लिए) न्यूनतम मज़दूरी तय करने की मांग या काम के घण्टे निर्धारित करने की मांग आदि। ये रोज़मर्रे की लड़ाइयां आगे बढ़ती हैं तो सभी पेशों के मज़दूरों को इन आम मांगों पर एकजुट कर देती हैं और अपने-अपने पेशों से बंधी हुई उनकी संकुचित मनोवृत्ति को तोड़ देती हैं। ये राजनीतिक संघर्ष पूरे पूंजीपति वर्ग और उनकी राज्यसत्ता के खिलाफ समूचे मज़दूर वर्ग को एकजुट कर देते हैं और जनता के अन्य वर्गोंके साथ भी उनके मोर्चाबन्द होने का आधार तैयार कर देते हैं। मज़दूर वर्ग के ये राजनीतिक संघर्ष पूंजीपति वर्ग की राज्यसत्ता को मजबूर करते हैं कि वह कानून बनाकर उनके काम के घण्टे निधरित करे, उनकी सेवाशर्तें तय करें, उनकी नौकरी की सुरक्षा की कमोबेश गारण्टी दे तथा मालिकों के ऊपर कानूनी बन्दिशें लगाकर उन्हें मज़दूरों को विभिन्न बुनियादी सुविधाएं देने के लिए बाध्य करें ताकि संगठित मज़दूरों की शक्ति पूंजीवादी व्यवस्था के ही सामने अस्तित्व का संकट न खड़ा

(पेज 6 पर जारी)

नोएडा के बुलडोजर झुग्गियों की ओर कहर से बचने के लिए एकजुट संघर्ष जरूरी

(बिगुल प्रतिनिधि)

नोएडा (गौतमबुद्ध नगर)। नोएडा प्रशासन झुग्गियों को उजाड़ने का मन बना चुका है। पिछले दिनों सेक्टर-44 की झुग्गियों को जिस साजिशाना ढंग से आग के हवाले कर मटियामेट कर दिया गया उससे प्राधिकरण के इरादे साफ हो चुके हैं। नोएडा के पास उजाड़े गये लोगों को बसाने की न कोई योजना है और न ही इरादा। सैकड़ों परिवार आज भी बेघर बेदर भटक रहे हैं। अब सेक्टर - 4, 5,8, 9 व 10 की बची हुई झुग्गियों की ओर बुलडोजर किसी भी समय रवाना हो सकता है। इसके कहर से बचने की अब एक ही सूरत बची है - इन झुग्गियों में रहने वालों का एकजुट संघर्ष।

नोएडा अधिकारियों के जालिमाना रवैये के खिलाफ झुग्गीवालों में जबर्दस्त गुस्सा है। बीते 8 अप्रैल को यह गुस्सा फूट पड़ा था। पन्द्रह-बीस हजार झुग्गी निवासी सड़कों पर उतर आये थे। नोएडा के प्रशासनिक कार्यालय पर जबर्दस्त प्रदर्शन हुआ था। इससे नोएडा एवं जिला प्रशासन के अधिकारी सकते में आ गये थे। जनाक्रोश के इस जबर्दस्त विस्फोट से भौचक नोएडा अधिकारियों ने झुग्गीवासियों को नयी जगहों पर बसाने के वास्ते नीति तैयार करने के लिए पन्द्रह दिनों का समय मांगा।

झुग्गीवालों के इस प्रदर्शन का आह्वान आनन-फानन में गठित हुए झुग्गी-झोपड़ी संयुक्त संघर्ष मोर्चा के बैनर तले किया गया था। इसमें झुग्गियों की राजनीति करने वाले सभी चुनावी पार्टियों के नेता शामिल थे। लेकिन समाजवादी पार्टी के नेताओं ने बड़े सुनियोजित ढंग से प्रदर्शन को 'हाइजैक' कर लिया। वैसे असलियत यह है कि झुग्गीवासियों का गुस्सा स्वतःस्फूर्त ढंग से सड़कों पर फूट पड़ा था।

इस जबर्दस्त जनप्रदर्शन के बाद सभी चुनावी पार्टियों के नेताओं में झुग्गीवासियों का असली रहनुमा साबित करने की होड़ मची हुई है। इसी होड़ में भारतीय जनता पार्टी ने बीते 22 अप्रैल को

(पेज 10 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

ईस्टर इण्डस्ट्रीज के मजदूर व यूनियन में अविश्वास दूर कैसे हो?

मैं लगभग एक साल से आपके 'बिगुल' समाचार पत्र का नियमित पाठक हूं। देश और दुनिया के सभी मजदूरों को एक करने के लिए 'बिगुल' महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। उदारीकरण का बहाना बनाकर सरकार एवं पूंजीपति मिलकर मज़दूरों पर लगाम कसने के लिए जो मज़दूर विरोधी नीतियां बना रहे हैं और श्रम कानूनों में परिवर्तन कर रहे हैं उसके विरोध में सभी मज़दूरों का एक होना अति आवश्यक है। मजदूरों की एकता बनाने के लिए ही मैं 'ईस्टर इंडस्ट्रीज लि. , खटीमा के मज़दूर एवं ईस्टर इंडिया इम्प्लाइज यूनियन के संबंध में कुछ कहना चाहता हूं।

यह फैक्ट्री जब 1985 में ईस्टर इंडिया लि. के नाम से स्थापित हुई थी। उस वक्त उसका मूल प्रोडक्ट प्रति माह 1200 टन चिप्स, 600 टन फिल्म व 200 टन यार्न का था। उस वक्त महज 100 मजदूर काम करते थे जो ट्रेनिंग या ठेकेदारी में थे। 1997 में यहां उत्पादन बढ़कर प्रति माह 3200 टन चिप्स, 200 टन फिल्म एवं 500 टन यार्न का हो गया था, साथ ही एक नए प्लान्ट प्लास्टिक इंजीनियरिंग में 200 टन का उत्पादन होने लगा था। जबकि 525 नियमित मजदूर व 200 ठेकेदारी में काम करने लगे थे।

1989 में ईस्टर इंडिया इम्प्लाइज यूनियन का रजिस्ट्रेशन होने के बाद यहां के मज़दूर संगठित हुए। यूनियन के जुझारू संघर्षों के कारण ही यहां के मजदूरों के वेतन व सुविधाओं में वृद्धि हुई। लोग नियमित होते गए, उनकी संख्या बढ़ती गयी। हम मजबूत बने रहे। 1998 के बाद से प्रबन्धकों द्वारा किसी न किसी आरोप में स्थायी मजदूरों को निकालने का क्रम शुरु हुआ। दिसम्बर 2001 की हड़ताल की विफलता के बाद से तो मजदूरों की स्थिति एकदम संकटग्रस्त होती गयी और हालत यह हो गयी कि कारखाने में जहां मजदूरों की संख्या घटकर 375 रह गयी वहीं प्रोडक्शन लगातार बढ़ता ही जा रहा है। एक समय जहां 7-8 मजदूर काम करते थे अब वहां एक मजदूर से काम लिया जा रहा है। परेशान करने के लिए मजदूरों को एक विभाग से दूसरे विभाग में भेज दिया जा रहा है।

कारखाने में परम्परा बनी हुई है कि हड़ताल के बाद यहां कर्मचारी निकाले जाते रहे हैं। 1990 में हड़ताल के बाद 18 कर्मचारी, 1991 में 20 कर्मचारी और 2001 में 28 कर्मचारी निकाले गए। यहां के मजदूर नौकरी जाने के भय से यूनियन का साथ देने से घबराते हैं। इस बीच 1995 में प्रबन्धन ने हमारी एकता को कमजोर करने के लिए ठाकुर प्रेम प्रकाश सिंह के नेतृत्व में एक दूसरी यूनियन 'ईस्टर इंडस्ट्रीज श्रमिक संघ' का गठन करवाया। इस यूनियन का काम हड़ताल होने पर मजदूरों में फूट डालने और प्रबन्धकों का सहयोग करना होता है। सन् 2001 के हड़ताल में भी इस यूनियन का यही रोल रहा है और हमारे आन्दोलन के पराजित होने में इसने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

'ईस्टर इंडिया इम्प्लाइज यूनियन' का नेतृत्व शुरू से ही श्री दान बहादुर सिंह एवं श्री कैलाश मनराल के हाथ में रहा है। यह दोनों ही श्रमिक नेता बहुत ही सुलझे हुए हैं। प्रबन्धन द्वारा 1994 में इस यूनियन का रजिस्ट्रेशन खारिज कराने की कोशिश को भी इन नेताओं ने जुझारू मजदूरों के सहयोग से नाकाम कर दिया था। 1995 व 1998 में इन्होंने हमारा अच्छा समझौता भी करवाया था। लेकिन एक दिक्कत कभी-कभी दोनों नेताओं के अहं का टकराव है जिसका खामियाजा श्रमिकों को भुगतना पड़ता हैं। 1998 के बाद दोनों नेताओं के आपसी विवाद और अविश्वास का सीधा असर श्रमिकों पर पड़ा। 2001 का वेतन समझौता तो जैसे-तैसे निपट गया लेकिन प्रबन्धन ने श्रमिकों का शोषण बढ़ा दिया। उसने यूनियन को कमजोर करना का प्रयास तेज कर दिया और एक साजिश के तहत बोनस जैसे मुद्दे पर हड़ताल करवाने में कामयाब रहा। इस मुद्दे पर भी दोनों नेताओं में गंभीर मतभेद बने रहे। उधर प्रबन्धन हड़ताल तोड़ने की कोशिशें करता रहा, प्रेम प्रकाश की यूनियन इसमें मदद करती रही और अन्तत: हड़ताल असफल हो गयी। यूनियन पदाधिकारियों सहित 28 श्रमिकों को नौकरी से निकाल दिया गया।

आज स्थिति यह है कि निकाले गए 28 श्रमिक भीतर काम कर रहे श्रमिकों को अपना दुश्मन समझते हैं। अन्दर काम कर रहे मज़दूर प्रबन्धन का दबाव झेल रहे हैं लेकिन नौकरी जाने के भय से खामोश बैठे हैं। आज कारखाने के मजदूरों और यूनियन के बीच अविश्वास की दीवार खड़ी हो गयी है।

दोबारा संगठित होने के लिए मेरा सुझाव है कि -

1. यूनियन के दोनों नेता अपने सभी आपसी मतभेद भुलाकर नेतृत्व में पारदर्शिता लायें।

2. मजदूरों के प्रति आपसी विश्वास पैदा करने के लिए लगातार कोई न कोई ठोस कार्यक्रम चलाता रहे और कोई भी निर्णय समस्त पदाधिकारियों और श्रमिकों को विश्वास में लेकर ही लें।

'बिगुल' के माध्यम से ईस्टर के सभी मजदूर साथियों से मेरा अनुरोध है वे अपने संगठन के प्रति विश्वास रखें। अपनी एकता को मजबूत करें, आज तक हमें जो भी सुविधाएं मिली हैं वह हमारी एकता और इसी यूनियन की देन है।

आज उदारीकरण के इस युग में मजदूर वर्ग पर जो हमला हो रहा है उसके लिए व्यापक एकता की जरूरत है और इसकी शुरुआत अपने कारखाने की एकता से ही हो सकती है। 'बिगुल' के सम्पादक महोदय से अनुरोध है कि ईस्टर के प्रति श्रमिकों को संगठित करने के लिए अपने विचार दें, मार्गदर्शन दें।

क्रान्तिकारी अभिवादन के साथ

एक श्रमिक

ईस्टर इंडस्ट्रीज, खटीमा

ईस्टर इण्डस्ट्रीज ..... वाले पत्र का जवाब

प्रिय साथी,

आपने अपने पत्र में कारखाने के भीतर मजदूरों की व्यापक एकता कायम करने के लिए जो सुझाव दिये हैं वे बिल्कुल ठीक हैं। इसके साथ ही कुछ और बातों को भी ध्यान में रखना होगा।

1. मजदूरों के बीच व्यापक एकता केवल नेताओं की गलतफहमियों और अविश्वास दूर करने की अपील से नहीं कायम हो जायेगी। जब तक मजदूरों की व्यापक आबादी की मजबूत एकता का दबाव नेताओं पर नहीं होगा तब तक ऐसा होना मुश्किल है। होना तो यह चाहिए कि एक कारखाने के भीतर मजदूरों की केवल एक यूनियन हो। दलगत आधार पर या कुछ लोगों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के लिए यूनियनों की अलग-अलग दुकानदारियों ने मजदूर आन्दोलन को बेहद नुकसान पहुंचाया है और मालिकान को मजदूरों पर हमला करने का अनुकूल अवसर दिया है। इसलिए दबाव इस बात के लिए बनाया जाना चाहिए कि जब मजदूरों की लड़ाई एक है तो उनका एक ही जुझारू संगठन हो।

2. यूनियन के संचालन में जनवादी तौर-तरीकों की बहाली के लिए संघर्ष करना होगा। नेतृत्व पर इसके लिए दबाव बनाना होगा कि सभी महत्वपूर्ण फैसले यूनियन की आम सभा के लिए जायें, न कि चन्द पदाधिकारियों द्वारा। यूनियन में जनवाद की वास्तविक बहाली तभी होगी जब यूनियन के सभी आम सदस्य रोजमर्रे के यूनियन कार्यों में भाग लें। केवल चन्दा देकर नेतृत्व का मुंह न जोहते रहें। इससे ट्रेड यूनियन नौकरशाही पैदा होती है और नेतृत्व को मनमानी करने का अवसर मिलता है। यूनियन कार्यों में आम मजदूरों की भागीदारी बढ़ाने के लिए यूनियन की ओर से नियमित अध्ययन शिविर, कार्यशालाएं, गोष्ठियां, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि आयोजित किये जाने चाहिए।

3. अर्थवाद की बीमारी ने भी यूनियनों को खोखला बनाकर रख दिया है। यूनियन कार्यों में आम मजदूरों की रुचि न होने का यह एक बड़ा कारण है। जैसा कि मजदूरों के महान नेता लेनिन ने कहा है कि यूनियनें कम्युनिज्म की पाठशालाएं हैं। आर्थिक मुद्दों पर संघर्ष के साथ ही यूनियन के भीतर देश और दुनिया की तमाम राजनीतिक घटनाओं पर जीवन्त बहस-मुबाहिसे और पूंजी के शोषण-उत्पीड़न का समूल नाश करने के लिए मजदूर क्रान्ति की जरूरत पर चर्चाएं आयोजित होनी चाहिए। आम मजदूरों को यह शिक्षित करना चाहिए कि जब तक पूंजीवाद-साम्राज्यवाद कायम रहेगा तब तक मजदूर वर्ग की सच्ची मुक्ति नहीं हो सकती। मजदूर वर्ग समाज का सबसे क्रान्तिकारी वर्ग है और हर प्रकार के अन्याय, सामाजिक गैर बराबरी और शोषण-उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने में समाज के अन्य मेहनतकश वर्गों की अगुवाई मजदूर वर्ग को ही करनी होगी। मजदूर वर्ग के इस ऐतिहासिक मिशन की याद आम मजदूरों को लगातार दिलाते रहना चाहिए हर छोटे-बड़े संघर्ष के दौरान तरह-तरह की जनकार्रवाइयों, आयोजनों-समारोहों के जरिये।

-सम्पादक

मजदूरों की फूट से मालिकों को मनमानी की खुली छूट

मैं और मेरे भाई ने हीरा भाई एंड संस होजरी में लगभग तीन साल तक काम किया। यह होजरी लुधियाना शहर के सुन्दर नगर इलाके में स्थित है। इस होजरी का मालिक विजय गुप्ता है। उसका बेटा टीनू भी फैक्टरी के "कामकाज" को संभालने में अपने बाप का साथ देता है। हीरा भाई कं. में इंटरलॉक मशीनों से टी शर्ट का कपड़ा बनता है। विजय गुप्ता यहां पर मजदूरों पर इतना अत्याचार करता है कि हर वक्त मजदूरों की नाक में दम किये रहता है। वह अक्सर मजदूरों को गंदी-गंदी गालियां बकता रहता है। नये कारीगरों से मालिश करवाता है। विजय गुप्ता तथा उसके बेटे की गैरहाजिरी में पीताम्बर जो यहां वाचमैन है, ही फैक्टरी मालिक बन बैठता है। विजय गुप्ता ने अपने इस चमचे को सभी अधिकार दे रखे हैं। जो मजदूर उसकी खुशामद करते हैं, उन्हें शराब, मीट-मछली देते हैं, उनको वह अधिक समय काम करने देता है तथा जो मजदूर ऐसा नहीं करते उनकी वह विजय गुप्ता के पास उलटी-सीधी शिकायतें करके उनसे बदला लेता है। विजय गुप्ता अपने इस चमचे की हर बात मानता है। पीताम्बर अक्सर मजदूरों के जूते, चप्पल, कपड़े चुरा लेता है। पिछले दिनों उसने मेरे साथी सुरेन्द्र की शर्ट चुरा ली थी।

विजय गुप्ता के अत्याचारों के चलते मजदूरों का इस फैक्टरी के चलते मजदूरों का इस फैक्टरी में टिके रहना बहुत कठिन है। यही वजह है कि हर महीने यहां से पुराने मजदूर काम छोड़ देते हैं तथा नये भर्ती होते रहते हैं। फैक्टरी गेट पर "कारीगरों की जरूरत है" का बोर्ड हर समय लटकता रहता है।

विजय गुप्ता अक्सर मजदूरों से काम करवाने पर उनके पैसे नहीं देता। मेरे तथा मेरे भाई के साथ भी ऐसा हुआ। उसने हम दोनों के लगभग 3000 रु. रख लिये हैं। पैसे लेने के लिए मैं कई महीने फैक्टरी तथा मालिक के घर के चक्कर लगाता रहा मगर कोई फायदा नहीं हुआ। इस फैक्टरी के बहुत से मजदूरों के साथ इस तरह का बरताव हो चुका है। लुधियाना की अनेक फैक्टरियों का यही चलन है। मजदूरों पर हो रहे इन अत्याचारों की मुख्य वजह मजदूरों का एकजुट न होना है। मजदूरों की आपसी एकता न होने के कारण मालिकों को मनमानी की खुली छूट मिली हुई है।

–राजेश, लुधियाना

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

'बिगुल'

सम्पादकीय कार्यालय	:	69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उप कार्यालय	:	जनगण होम्यो सेवासदन मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क	:	सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार, फेज-1 दिल्ली-91

मूल्य - एक प्रति -रु. 3/-
वार्षिक - रु. 40.00 (डाक व्यय सहित)

'बिगुल'

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 4:00 से 7:00 बजे तक)
3. जाफ़रा बाजार, गोरखपुर -273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

- कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा- लेनिन 5/-
- मकड़ा और मक्खी- विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
- ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके-सर्जो रोस्तोवस्की 3/-
- अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
- समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
- क्यों माओवाद? 10/-
- मई दिवस का इतिहास 5/-
- अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
- पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-
- बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 19 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजे :
जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ

कार्ल मार्क्स के जन्मदिन (5 मई) के अवसर पर

कार्ल मार्क्स की समाधि पर भाषण

-फ्रेडरिक एंगेल्स

14 मार्च को तीसरे पहर, पौने तीन बजे, संसार के सबसे महान विचारक की चिन्तन-क्रिया बन्द हो गयी। उन्हें मुश्किल से दो मिनट के लिए अकेला छोड़ा गया होगा, लेकिन जब हम लोग लौटकर आये, हमने देखा कि वह आरामकुर्सी पर शान्ति से सो गये हैं- परन्तु सदा के लिए।

इस मनुष्य की मृत्यु से यूरोप और अमरीका के जुझारू सर्वहारा वर्ग की और ऐतिहासिक विज्ञान की अपार क्षति हुई है। इस ओजस्वी आत्मा के महाप्रयाण से जो अभाव पैदा हो गया है, लोग शीघ्र ही उसे अनुभव करेंगे।

जैसे कि जैव प्रकृति में डार्विन ने विकास के नियम का पता लगाया था, वैसे ही मानव इतिहास में मार्क्स ने विकास के नियम का पता लगाया था। उन्होंने इस सीधी-सादी सचाई का पता लगाया जो अब तक विचारधारा की अतिवृद्धि से ढंकी हुई थी- कि राजनीति, विज्ञान, कला, धर्म, आदि में लगने के पूर्व मनुष्य जाति को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना और सिर के ऊपर साया चाहिए। इसलिए जीविका के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन और फलत: किसी युग में अथवा किसी जाति द्वारा उपलब्ध आर्थिक विकास की मात्रा ही वह आधार है जिस पर राजकीय संस्थाएं, कानूनी धारणाएं, कला और यहां तक कि धर्म संबंधी धारणायें भी विकसित होती है। इसलिए इस आधार के ही प्रकाश में इन सब की व्याख्या की जा सकती है, न कि इससे उल्टा, जैसा कि अब तक होता रहा है।

परन्तु इतना ही नहीं, मार्क्स ने गति के उस विशेष नियम का पता लगाया जिससे उत्पादन की वर्तमान पूंजीवादी प्रणाली और इस प्रणाली से उत्पन्न पूंजीवादी समाज, दोनों ही नियंत्रित है। अतिरिक्त मूल्य के आविष्कार से एकबारगी उस समस्या पर प्रकाश पड़ा, जिसे हल करने की कोशिश में किया गया अब तक सारा अन्वेषण- चाहे वह पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों ने किया हो या समाजवादी आलोचकों ने, अन्ध अन्वेषण ही था।

ऐसे दो आविष्कार एक जीवन के लिए काफ़ी हैं। वह मनुष्य भाग्यशाली है, जिसे इस तरह का एक भी आविष्कार करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। परन्तु जिस भी क्षेत्र में मार्क्स ने खोज की और उन्होंने बहुत से क्षेत्रों में खोज की और एक में भी सतही छानबीन करके ही नहीं रह गये। उसमें यहां तक कि गणित में भी, उन्होंनें स्वतंत्र खोजें की।

ऐसे वैज्ञानिक थे वह। परन्तु वैज्ञानिक का उनका रूप उनके समग्र व्यक्तित्व का अर्द्धांश भी न था। मार्क्स के लिए विज्ञान ऐतिहासिक रूप से एक गतिशील, क्रान्तिकारी शक्ति था। वैज्ञानिक सिद्धान्तों में किसी नयी खोज, जिसके व्यावहारिक प्रयोग का अनुमान लगाना अभी सर्वथा असंभव हो, उन्हें कितनी भी प्रसन्नता क्यों न हो, जब उनकी खोज से उद्योग-धन्धों और सामान्यत: ऐतिहासिक विकास में कोई तात्कालिक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते दिखाई देते थे। तब उन्हें बिल्कुल ही दूसरे ढंग की प्रसन्नता का अनुभव होता था। उदाहरण के लिए बिजली के क्षेत्र में हुए आविष्कारों के विकास क्रम का और मरसैल देप्रे के हाल के आविष्कारों का मार्क्स बंड़ें ग़ौर से अध्ययन कर रहे थे।

मार्क्स सर्वोपरि क्रान्तिकारी थे। जीवन में उनका असली उद्देश्य किसी न किसी तरह पूंजीवादी समाज और उससे पैदा होने वाली राजकीय संस्थाओं के ध्वंस में योगदान करना था, आधुनिक सर्वहारा वर्ग को आजाद करने में योग देना था, जिसे सबसे पहले उन्होंने ही अपनी स्थिति और आवश्यकताओं के प्रति सचेत किया और बताया कि किन परिस्थितियों में उसका उद्धार हो सकता हैं संघर्ष करना उनका सहज गुण था। और उन्होंने ऐसे जोश, ऐसी लगन और ऐसी सफलता के साथ संघर्ष किया जिसका मुकाबला नहीं है। प्रथम <<Rheinische Zeitung>> (1842) में, पेरिस के <<Vorwarts!>> (1844)में, <<Deutsche brusseler-Zeitung>> (1847)में, <<Neue Rheinische Zeitung>> (1848-1849)में, <<New-York Daily Tribune>> (1852-1861) में उनका काम, इनके अलावा अनेक जोशीली पुस्तिकाओं की रचना, पेरिस, ब्रसेल्स और लन्दन के संगठनों में काम और अन्तत: उनकी चरम उपलब्धि महान अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ की स्थापना यह इतनी बड़ी उपलब्धि थी कि इस संगठन का संस्थापक, यदि उसने कुछ भी और न किया होता, उस पर उचित ही गर्व कर सकता था।

इस सब के फलस्वरूप मार्क्स अपने युग के सबसे अधिक विद्वेष तथा लांछना के शिकार बने। निरंकुशतावादी और जनतंत्रवादी, दोनों ही तरह की सरकारों ने उन्हें अपने राज्यों से निकाला। पूंजीपति, चाहे वे रूढ़िवादी हों चाहे घोर जनवादी, मार्क्स को बदनाम करने में एक दूसरे से होड़ करते थे। मार्क्स इस सबको यूं झटकारकर अलग कर देते थे जैसे वह मकड़ी का जाला हो, उसकी ओर ध्यान न देते थे, आवश्यकता से बाध्य होकर ही उत्तर देते थे। और अब वह इस संसार में नहीं हैं।

साइबेरिया की खानों से लेकर कैलिफोर्निया तक, यूरोप और अमरीका के सभी भागों में उनके लाखों क्रान्तिकारी मजदूर साथी जो उन्हें प्यार करते थे, उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, आज उनके निधन पर आंसू बहा रहे हैं। मैं यहां तक कह सकता हूं कि चाहे उनके विरोधी बहुत से रहे हों, परन्तु उनका कोई व्यक्तिगत शत्रु शायद ही रहा हो। उनका नाम युगों-युगों तक अमर रहेगा, वैसे ही उनका काम भी अमर रहेगा!

[एंगेल्स द्वारा हाइगेट कब्रिस्तान, लन्दन में 17 मार्च 1883 को अंग्रेजी में दिया गया भाषण। जर्मन में 22 मार्च 1883 को <<Der Sozialdemokrat>> समाचार पत्र , अंक 13 में प्रकाशित।]

मेहनतकश वर्ग के चेतना की दुनिया में प्रवेश करने का जश्न

"मेहनतक़श साथियो! मई दिवस आ रहा है। वह दिन, जब तमाम देशों के मेहनतक़श वर्ग चेतना की दुनिया में प्रवेश करने का जश्न मनाते हैं, इन्सान के हाथों इन्सान के शोषण और दमन के खिलाफ अपनी संघर्षशील एकजुटता का इजहार करते हैं, करोड़ों मेहनतक़शों को भूख, ग़रीबी और जिल्लत की ज़िन्दगी से आज़ाद कराने की प्रतिज्ञा करते हैं इस महान संघर्ष में दो दुनियाएं रूबरू खड़ी हैं- सरमाये की दुनिया और मेहनत की दुनिया, शोषण तथा गुलामी की दुनिया।

एक तरफ खड़े हैं खून चूसने वाले मुट्ठी भर अमीरो-उमरा, उन्होंने

फैक्ट्रियां और मिलें, औजार और मशीनें हथिया रखी हैं, उन्होंने करोड़ों एकड़ जमीन और दौलत के पहाड़ों को अपनी निजी जायदाद बना लिया है, उन्होंने सरकार और फौज को अपना खिदमदगार बना लिया है, लूट-खसोट से इकट्ठा की हुई अपनी दौलत की रखवाली करने वाला वफादार कुत्ता। दूसरी तरफ खड़े हैं उनकी लूट के शिकार करोड़ों गरीब। वे मेहनत मज़दूरों के लिए भी उन धन्ना सेठों के सामने हाथ फैलाने पर मजबूर हैं। इनकी मेहनत के बल से ही सारी दौलत पैदा होती है। लेकिन रोटी के एक टुकड़े के लिए उन्हें तमाम उम्र एड़ियां रगड़नी पड़ती हैं। काम पाने के लिए भी गिड़गिड़ाना पड़ता है, कमरतोड़ श्रम में अपने खून की आखिरी बूंद तक झोंक देने के बाद भी ज़िन्दगी भूखे पेट गुजारनी पड़ती है। गांव की अंधेरी कोठरियों और शहरों की सड़ती, गन्दी बस्तियों में।

लेकिन अब उन ग़रीब मेहनतक़शों ने दौलतमंदों और शोषकों के खिलाफ जंग का ऐलान कर दिया है। तमाम देशों के मज़दूर श्रम को पैसे की गुलामी, ग़रीबी और अभाव से मुक्त कराने के लिए लड़ रहे हैं जिसमें साझी मेहनत से पैदा हुई दौलत से मुट्ठी भर अमीरों को नहीं बल्कि सब मेहनत करने वालों को फायदा होगा। वे जमीन, फैक्ट्रियों, मिलों और मशीनों को तमाम मेहनतक़शों की साझी मिल्कियत बनाना चाहते हैं। वे अमीर-गरीब के अन्तर को खत्म करना चाहते हैं वे चाहते हैं कि मेहनत का फल मेहनतक़श को ही मिले, इन्सानी दिमाग की हर उपज, काम करने के तरीकों में आया हर सुधार मेहनत करनेवालों के जीवन स्तर में सुधार लाये, उसके दमन का साधन न बने।

सरमाये के खिलाफ श्रम के भीषण संघर्ष में सब देशों के मज़दूरों को अनेक कुर्बानियां देनी पड़ी हैं। बेहतर जीवन और वास्तविक आज़ादी के अधिकार के लिए लड़ते हुए उनके खून के दरिया बहे हैं। जो मज़दूरों के हित में लड़ते हैं उन्हें हुकूमतों के बर्बर अत्याचार झेलने पड़ते हैं, लेकिन इतने जुल्मो सितम के बावजूद दुनिया भर के मज़दूरों की एकता बढ़ रही है और वे लगातार, कदम-ब-कदम सरमायेदार शोषक वर्ग पर सम्पूर्ण विजय की ओर बढ़ रहे हैं।"

(रूसी क्रान्ति के महान नेता लेनिन ने 1904 में मई दिवस के अवसर पर यह पर्चा लिखा था)

एक दिन की देशव्यापी आम हड़ताल, लेकिन फिर उसके बाद?

इक्कीस मई को देशव्यापी आम हड़ताल की घोषणा हुई है। विभिन्न संसदीय वामपंथी दलों से जुड़ी ट्रेड यूनियनों के आह्वान पर होने वाली इस हड़ताल में इंटक और बी एम एस शामिल नहीं हैं। इंटक और बी एम एस तो पहले ही दुम दबाकर किनारे हो चुकी हैं। रहा सवाल संसदीय वामपंथ की पिछलग्गू ट्रेड यूनियनों का तो उनका इतिहास बताता है कि मज़दूरों के दबाव में उन्होंने संघर्षों का ऐलान तो किया है, पर हर संघर्ष में अपनी नपुंसकता का ही परिचय दिया है। इसके बावजूद मजदूर संघर्ष में उतरने को तैयार है, वह हड़ताल की तैयारी कर रहा है क्योंकि उसके सामने संघर्ष के अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

यह मजदूर वर्ग का भीषण दबाव ही है कि इक्कीस मई की हड़ताल का ऐलान हुआ है। अस्तित्व के संकट से जूझ रहे मजदूर वर्ग के आक्रोश को मौजूदा नेतृत्व किसी मुकाम तक नहीं ले जा सकता। वह प्रेशर लीक करने का ही काम कर सकता है। पिछले तेरह वर्षों में यह असलियत सामने आ चुकी है। उदारीकरण निजीकरण की नीतियों के कारण हो रही भयंकर तबाही के कारण ट्रेड यूनियन नेतृत्व केवल कदमताल करता रहा है। संसद घेराव और भारत बंद जैसे कार्यक्रमों में भी उसने सिर्फ रस्म अदायगी ही की है। गत 26 फरवरी का संसद मार्च ताजा उदाहरण है। देश के कोने-कोने से दिल्ली पहुंचे मजदूर बदइंतजामी और अफरातफरी के बीच यहां वहां भटकते रहे। दो मंचों से हो रही भाषणबाजी और नेताओं की इस घटिया फूहड़ नौटंकी से निराश नेतृत्वविहीनता की स्थिति में वे अपने घरों को लौट गये।

मजदूर वर्ग से एक के बाद एक छीने जा रहे उसके बुनियादी हकों, रोजी-रोटी पर लगातार पड़ रही मार के खिलाफ संघर्षों की कोई निरन्तरता नहीं दिखाई पड़ती। संशोधनवादी वामपंथी राजनीति की मुट्ठी में कैद मौजूदा ट्रेड यूनियन नेतृत्व की स्थिति यह है कि वह मजदूरों के आर्थिक हितों की हिफाजत में भी सक्षम नहीं है। व्यापक राजनीतिक संघर्षों की तैयारी के बारे में सोचना तो उसके एजेंडे से ही गायब हो चुका है। दिन-प्रतिदिन समूचे ट्रेड यूनियन नेतृत्व का व्यवस्थाभोगी चरित्र नंगा होता जा रहा है। संशोधनवाद की इस सड़ांध का आलम यह है कि कारखाना स्तर तक के इनके नेताओं के बारे में मज़दूरों की राय लगभग वैसी है, जैसी घोषित दलालों के बारे में ये कुलीन माने जाते हैं और ये मजदूरों के उतने ही घृणा के पात्र हैं, जितना कि मैनेजमेण्ट।

दुनिया में चीन और देश में पं. बंगाल के नकली समाजवाद की पोल खुल जाने के बाद भी ये बेसुरा राग अलापने में मस्त है, चीन और प.बंगाल इनके मक्का- मदीना बने हुए हैं। प.बंगाल में नकली वामपंथियों के राज में मजदूर वर्ग की तबाही-बरबादी किसी भी राज्य से कम नहीं है। लाल पताकायें फहराने से ही मुक्ति नहीं मिलने वाली, यह बात मजदूर समझ चुका है। संसदीय वामपंथ के मठाधीशों ने बंगाल में 'सीटू' के ढांचे को सत्ता के डंडों से बांधकर खड़ा तो कर दिया है लेकिन मजदूर वर्ग में पनप रहा भीषण असंतोष इस ढांचे को कभी भी धूल चटा सकता है, इस डर से वे मुक्त नहीं हैं।

बहरहाल, आज मजदूर वर्ग लड़ने की इच्छा का इजहार ही नहीं कर रहा है बल्कि वास्तव में वह लड़ना चाहता है। सच्चाई यह है कि एक-एक करके उसके अधिकारों को छीनकर जिस तरह उसे कोने में धकेल दिया गया है, ऐसे में लड़ना उसके अस्तित्व की शर्त बन चुका है। पूंजीवादी व्यवस्था की सीमाएं साफ दिखाई पड़ रही हैं। दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाईयां बिना किसी सही राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के अभाव में मरगिल्ली होकर दम तोड़ रही हैं। पूंजी की राक्षसी ताकतों के हमले लगातार तीखे हो रहे हैं। लाल पताकाधारी नकली वामपंथी मजदूर वर्ग से गद्दारी करने और विभ्रम फैलाने का इतिहास रच रहे हैं।

ज्यादा से ज्यादा सच्चाइयां आज हमारे सामने हैं। सवाल है मजदूर वर्ग के बीच से नया क्रान्तिकारी नेतृत्व पैदा होने का। जाहिर है यह अपने आप नहीं होगा, इसके लिए सचेतन प्रयास करने होंगे। क्रान्तिकारी राजनीति जब तक अस्तित्व में नहीं आती, तब तक वर्तमान ट्रेड यूनियन नेतृत्व धोखा देता ही रहेगा। सवाल सिर्फ एक दिन की हड़ताल का नहीं है। सवाल इससे आगे जाने का है। व्यापक संघर्ष का कार्यक्रम बनाने का है। हमारी आंखों के सामने ये सवाल तब तक मौजूद रहेंगे, जब तक सर्वहारा के नये सेनापति नहीं पैदा किये जाते, जब तक नई क्रांतिकारी ताकतें संघर्षों की बागडोर अपने हाथ में नहीं ले लेती हैं।

हम इस हड़ताल में भागीदारी का पुरजोर ढंग से समर्थन करते हैं। हम मजदूर वर्ग का आहवान करते हैं कि वह इस एक दिवसीय हड़ताल को पूरी तरह से सफल बनाये इसमें व्यापक रूप से अधिकाधिक मजदूरों की भागीदारी को सुनिश्चित किया जाय। साथ ही मजदूर वर्ग वर्तमान ट्रेड यूनियन नेतृत्व पर दबाव डाले कि नेतृत्व इस हड़ताल को सिर्फ रस्म अदायगी न बनाकर आगे के संघर्षों का एक कार्यक्रम प्रस्तुत करे। यदि वर्तमान ट्रेड यूनियन नेतृत्व ऐसा नहीं करता है तो मजदूर वर्ग को तमाम संघर्षों में सक्रिय भागीदारी करते हुए अपने बीच से नये क्रान्तिकारी नेतृत्व को पैदा करने की तैयारियों में जुट जाना होगा।

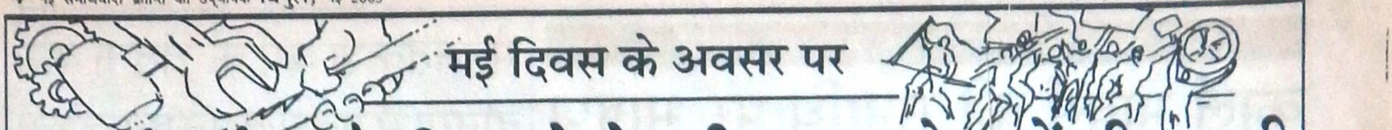

मई दिवस के अवसर पर

अल्बर्ट पार्सन्स और शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी

इस बार हम 'बिगुल' के पाठकों के लिए अमेरिकी लेखक हावर्ड फास्ट के प्रसिद्ध उपन्यास 'दि अमेरिकन' का एक हिस्सा प्रस्तुत कर रहे हैं। इस हिस्से में शिलिंग नाम का एक मजदूर कार्यकर्ता उपन्यास के नायक तथा मजदूर आन्दोलन से सहानुभूति रखने वाले जज पीटर आल्टगेल्ड को मजदूर नेता अल्बर्ट पार्सन्स के बारे में बताता है और 1886 में शिकागो के हे मार्केट चौक पर मजदूरों के कत्लेआम तथा पार्सन्स और दूसरे मजदूर नेताओं को हत्या की साजिश में फंसाये जाने की कहानी बयान करता है।

"बहुत कुछ है पार्सन्स के बारे में बताने को, पर वक्त बहुत ही कम है, बस इतना है कि यहां वहां से चुनकर कुछ टुकड़े सुना दूं। जैसे उसकी पत्नी लूसी, जो आधी इण्डियन और आधी स्पानी थी, अकेले शान से खिलने वाले जंगल के गुलाबों की तरह दुर्दम्य, सांवली, सुन्दर। एक दूसरे के लिए उनका प्यार पुराने ढंग के इश्क जैसा था, पर था खरा प्यार! और क्या बताऊं? वह छपाई करता था, अखबारों में लिखता था, सम्पादन का काम करता था। पर सबसे पहले वह टाइप सेट करने वाला एक मजदूर था। उसके हाथ काम करने में कुशल थे; वह एक अच्छा बढ़ई था और जब-तब देहातों में मवेशियों के झुण्डों को चराने का काम भी कर लिया जाता था। तुम ऐसे आदमियों को जानते हो जो औरत की तरह कोमल और इस्पात के टुकड़े की तरह सख्त हों? तुम फौज में ऐसे आदमियों से मिले होगे। पार्सन्स ठीक ऐसा ही था। मैं समझता हूं कि मैं और भी बहुत कुछ बता सकता हूं, पर मैं उसकी वकालत नहीं कर रहा। बहुत सी बातों में असहमत हूं मैं उससे। मैं तो हे मार्केट वाले मामले में एक-दो बातें बताना चाहता हूं जो शायद तुम्हें मालूम न हों।

"हां, यह मैं जरूर बताना चाहूंगा कि मैं पहली बार उससे कैसे मिला। यह पुरानी कहावत तो सुनी ही होगी कि दिल तो बस एक बार देखता है, फिर तो आंखें ही देखती हैं। मैं उस दिन की याद करता हूं जब पहली बार उस पर नजर पड़ी। 1877 की बात है, बड़ी रेलवे हड़ताल के दिनों की, जब मजदूर आन्दोलन जागा था, जैसे उसी समय जन्मा था। हड़ताल की प्रकृति ही जन्म जैसी थी। शुरू करते समय दरअसल कोई संगठन नहीं था। पहले एक जगह मजदूरों ने काम बन्द किया, फिर दूसरी जगह, फिर एक और जगह और धीरे-धीरे वह एक ऐसी हड़ताल बन गई जैसी इस देश में पहले कभी नहीं हुई थी और इसी के साथ मजदूर आन्दोलन भी उठ खड़ा हुआ। पर कोई महत्वपूर्ण नेता नहीं था। नेतृत्व को भी हड़ताल की तरह स्वतःस्फूर्त ढंग से, आन्दोलन के बीच से पैदा होना था। अल्बर्ट पार्सन्स इसी रास्ते से आया। हां, इसके पहले भी वह एक संगठनकर्ता रहा था, यूनियन का अच्छा कार्यकर्ता था, मीटिंगों में बोला था, लेकिन 1877 के जुलाई महीने में यहां मजदूरों की ऐसी मीटिंग हुई जैसी इसके पहले कभी नहीं हुई थी। मजदूरों को मार्केट स्ट्रीट पर बुलाया गया और वे मेडीसन चौराहे के पास इकट्ठा हुए। कितने लोग थे वहां, भगवान ही जानता है। कोई बीस हजार कहता है, कोई तीस हजार। मैं तो बस यही बता सकता हूं कि घंटों तक वे आते ही रहे और फिर तो चेहरों का ऐसा सागर लहराने लगा जैसा मैंने अपनी जिन्दगी में कभी नहीं देखा था। जहां कहीं भी लोग खड़े हो सकते थे वहां ऊपर को उठे चेहरों का लहराता हुआ कालीन दिखता था। उनके ऊपर थीं मशालें और झण्डे। मुझे डर सा महसूस होने लगा। यह भी लग रहा था जैसे खुशी से रो पड़ूंगा। और तब अल्बर्ट पार्सन्स खड़ा हुआ और उसने भाषण दिया। तभी मैंने उसे पहली बार देखा।

"तुमने उसे नहीं देखा है, है न? लेकिन तुमने तस्वीरें तो देखी हैं। कुछ अच्छी हैं उनमें। ऊंची भौंहें, सुन्दर काली आंखें, नाक और ठुड्डी रत्न की तरह तराशे हुए, काली रेशमी मूंछें।... मैं उसे सुनने लगा। उसकी बातों को लिखना चाहा पर बस शुरू में ही। उसके बाद मैंने लिखना बन्द कर दिया और बस सुनता रहा। जानते हो उसने शुरू कैसे किया? उसने कहा, 'अमेरिकी साथियो! आजादी जिनकी रोटी है और स्वतंत्रता जिनका दूध, मैं तुमसे न्याय और अन्याय की बात करना चाहता हूं। आदमी के अधिकारों के बारे में नहीं, बल्कि आशाओं के बारे में, क्योंकि हमारे पास अधिकार बहुत कम हैं और आशाएं बहुत सी।' इतना मुझे याद है और फिर लिखना बन्द कर दिया था मैंने। लेकिन बाद में मैंने खुद से पूछा, उसमें कितना वास्तविक है? कितना सच है? और उसमें किस हद तक अभिनय है? वह बूथ जैसा लगा, एडविन बूथ जैसा? और हमारे लिए तब वह एक अजीब

आदमी था।

"मैं अगले दिन अपने लोगों के अखबार के दफ्तर में उससे मिला। हमने हाथ मिलाये, कुछ बातें हुईं। बात कर ही रहे थे कि पुलिस लेने आ गई। तुम जानते ही हो, कैसे। दो थे, उन्होंने उससे सवाल पूछे और जब उसने जवाब देने की कोशिश की तो उसके मुंह पर थप्पड़ों की झड़ी लगा दी। उन्होंने उससे पूछा कि टेक्सास के बागी दोगले, शिकागो आकर गड़बड़ी करने का तेरा मतलब क्या था? जब उसने बताने की कोशिश की कि वह मजदूर पार्टी की एक सभा में बोला था, उसने मजदूरों को उनके मतदान के अधिकार के बारे में बताया था तो पुलिस ने उसे बन्द कर दिया और फिर पीटा। फिर उन्होंने उसे जाने दिया। पर उन्होंने उसे चेतावनी दे दी। उन्होंने उसे धमकाया कि यह बहुत ही आसान है कि किसी दिन वह किसी गली के नुक्कड़ पर मरा पाया जाये। उन्होंने कहा कि अगर उसने मजदूरों को भड़काना जारी रखा तो हो सकता है किसी दिन कोई भीड़ उसे लैम्प पोस्ट से लटका दे। यह सब उसने लौटकर हमें बताया। हम उसका इन्तजार कर रहे थे।

"इसी के बाद वह अल्बर्ट पार्सन्स सामने आया जिसकी मैं बात कर रहा हूं।

"फिर, आठवें दशक के आखिरी वर्षों में हमने साथ काम किया। अभी तक चुनाव में उसकी आस्था थी और शिकागो में लेबर पार्टी दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी। कैसा आदमी था वह? वह थक नहीं सकता था। असफलता उसे और मजबूत बना देती थी। हम सबके चेहरे अगर बुरी तरह उतरे होते, तब भी वह मुस्कुरा सकता था। वह एक शाम में चार-चार जगह भाषण देता था और तुम जानते ही हो कि जनता के बीच बोलने से ज्यादा जानलेवा शायद ही कुछ हो। वह 'नाइट्स ऑफ लेबर' में काम करता था। वह लिखता था। वह एक साथ बीस काम करता था और फिर भी हमेशा पत्नी के लिए काफी समय निकाल लेता था। सड़कों पर वह पत्नी के साथ ऐसे चलता जैसे दुनिया में उससे ज्यादा महत्वपूर्ण कुछ हो ही नहीं–दोनों एक दूसरे की कमर में हाथ डाले होते और एक दूसरे को निहारते चलते जैसे उसी दिन और उसी क्षण एक-दूसरे को खोज निकाला हो।

"जैसा मैंने कहा, उसके लिए कुछ भी ज्यादा नहीं था। अगले कुछ सालों में हमने उसे चुनाव लड़ाया–एल्डरमैन, फिर काउंटी क्लर्क, फिर कांग्रेस। और वह सिर्फ अपने लिए नहीं, हमारे हर उम्मीदवार के लिए बोलता था। और इस सबके साथ उसने शिकागो में पहली ट्रेड्स असेम्बली बुलाने के लिए भी समय निकाल लिया। उसका पहला अध्यक्ष बना, अपने पेशे में टाइपोग्राफिकल यूनियन बनायी। और अगर कोई भी यूनियन बनाने में सलाह और ताकत मांगता था तो पार्सन्स उसका मुफ्त सलाहकार और सहयोगी बनने को तैयार रहता था। एक समय हम उसे अमेरिका के राष्ट्रपति के लिए लेबर पार्टी का पहला उम्मीदवार बनाना चाह रहे थे। पर जानते हो, उसकी उम्र ही नहीं थी। सोच सकते हो भला, वह सिर्फ पैंतीस का था। आज भी वह सिर्फ तैंतालिस का है।

"पर मैं अपनी कहानी से भटक रहा हूं। मुझे तुम्हारे धैर्य की परीक्षा लिए बिना जल्दी से जल्दी इसे संक्षेप में बता देना चाहिए। 1880 में वह लेबर पार्टी से अलग हो गया। क्यों? हम और तुम व्यावहारिक लोग हैं, पर पार्सन्स देख रहा था कि क्या हो रहा है। घूस, वोटों की खरीद-फरोख्त, भ्रष्टाचार। एक बार उसने मुझसे कहा था, 'एक आदमी से बारह घण्टे काम कराया जाता है और उसे जिन्दा रहने की जरूरतों का आधा भी नहीं दिया जाता और फिर ये उम्मीद की जाती है कि वह सावधानी और ईमानदारी से वोट देगा। मैं सच कह रहा हूं, अगर उसके बच्चे भूखों मरते हों तो हैरान मत होना अगर वह अपना वोट बेच देता है।'

"मैंने उससे पूछा था कि वह क्या करने का इरादा रखता है। उसने कहा आठ घण्टे काम के दिन की मांग के लिए काम करना और मजदूरों को संगठित करना। उस समय 'काम के घण्टे आठ' आन्दोलन में हमारी ताकत बढ़नी शुरू ही हुई थी। सारी ट्रेड यूनियनों ने मिलकर पार्सन्स को पूरे मध्य-पश्चिम में भेजा। वह हर जगह बोला। मैं नहीं जानता कि देश में एक भी आदमी ऐसा होगा जिसने मजदूरों को इतना दिया हो जितना पार्सन्स ने। उसे आठ घण्टे काम के बारे में वाशिंगटन के बड़े सम्मेलन में शिकागो का प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया। सम्मेलन में उसे उस कमेटी में चुन लिया गया जिसका काम वाशिंगटन में रहकर संगठित मजदूरों के आन्दोलनों में तालमेल करना था और आठ घण्टे कार्यदिवस के सवाल का गहराई से अध्ययन करना था।

"वाशिंगटन में पार्सन्स के साथ क्या हुआ, उसने वहां क्या देखा, मैं नहीं जानता।... लेकिन वाशिंगटन में कुछ ऐसा हो गया कि वह बदल गया। उसने देखा कि देश पर शासन कैसे होता है और उसके बाद से उसकी बातों का ढंग बदल गया।

"उसके बाद वह हमसे पूरी तरह अलग हो गया और अन्तरराष्ट्रीय मजदूर संघ (इण्टरनेशनल वर्किंग पीपुल्स एसोसिएशन) में शामिल हो गया। वह क्रान्तिकारी समाजवादी बन गया। अराजकतावादी? यह तो उसे कहा गया है, बिल्ला लगाया गया है उस पर। मैं जानता हूं वह क्या था! किसी भी हालत में मैं उसके खिलाफ रहूंगा लेकिन वह था वही, एक क्रान्तिकारी समाजवादी। उस बेहूदे कार्टून जैसा नहीं, जैसा कि उसे पेश किया गया है –दोनों हाथों में बम लिये एक दाढ़ीवाला पागल और नीचे अराजकतावादी लिखा हुआ। पार्सन्स ऐसा नहीं है। यह मानते हुए भी कि वह एक ऐसा आदमी है जिसने गलत रास्ता चुना, मैं यही कहूंगा कि वह ऐसा नहीं है।

"और फिर भी जब मैं सोचता हूं कि उसके बाद उसने क्या किया तो मैं किस हद तक उसकी बुराई कर सकता हूं? वह लोगों के पास गया। वह कोयला क्षेत्रों में गया, पेनसिल्वेनिया और इलिनाय के नारकीय नगरों में घूमा। वह खदान मजदूरों से बातचीत करता था, उन्हीं के साथ रहता था, हर-हमेशा समाजवाद के लक्ष्य का प्रचार करता हुआ। फिर भी, यहां से पांच सौ मील के दायरे में कोई ऐसा मजदूरों का संघर्ष नहीं था, जिसमें उसने शिरकत न की हो। उसने अपने इण्टरनेशनल के पहले अंग्रेजी साप्ताहिक 'अलार्म' की स्थापना की, उसका सम्पादन किया, ये तो तुम जानते ही हो। कुछ वर्षों पहले जब विशाल हड़तालें हुईं, वह मजदूरों के साथ था। ये मत सोचना कि उन्होंने पहले उसे मार डालने की कोशिश नहीं की। पिंकरटन (पूंजीपतियों के जासूसों और एजेंटों की फौज) की टुकड़ियों को पार्सन्स को खत्म कर देने के गुप्त आदेश थे, मैंने अपनी आंखों से देखा है। औरों के लिए भी थे, पर लिस्ट में पहला नाम पार्सन्स का था। पुलिस को निर्देश थे कि पहला मौका पाते ही उसे लाठियों से पीट-पीटकर मार डाला जाये। और उन्होंने इसकी कोशिश भी की, हरचंद कोशिश की।

"हे मार्केट की बात बताने से पहले और क्या है बताने को? जानना चाहेंगे कैसे रहता था वह? वह अकसर आमदनी के किसी स्रोत के बिना ही रहता था। लूसी होशियार थी। मैंने देखा है कैसे वह पार्सन्स के पहन-पहनकर चिथड़ा हुए कपड़ों की मरम्मत करती थी। बची-खुची चीजों से खाना तैयार कर देती थी वह। ऐसे भी साल गुजरे थे जब उसके पास कोई काम ही नहीं था। पश्चिम के हर अखबार और हर छापाखाने की ब्लैकलिस्ट में उसका नाम था। तब उसके अपने लोग अपनी थोड़ी सी कमाई में से उसे खिलाते थे। जब तक जबर्दस्ती नहीं की जाती थी, वह कुछ नहीं लेता था। उसने कभी कुछ मांगा नहीं, कभी शिकायत नहीं की। एक बार मैं उससे मिला तो उसने पूरे दो दिन से कुछ नहीं खाया था, पर एक घण्टे से ज्यादा बीत गया तब मैं समझ पाया कि उसे भूख से गश आ रहा है।

"मैं जानता हूं मुझे मीटिंग की बातें दोहराकर तुम्हें उबाना पड़ेगा क्योंकि ये सब हम दोनों जानते हैं। मैं तो अपने लिए कह रहा हूं, तुम मुझे सुन रहे हो, इसके लिए शुक्रिया। लेकिन पहले मैं उस आदमी की बात पूरी कर लूं। ये लोग आज उसे भले ही मार डालें पर वह मरेगा नहीं। कुछ लोग मरते नहीं। हो सकता है हम दोनों का बाद में उससे वास्ता पड़े। इसीलिए मैं उसे समझना चाहता हूं, अपने लिए भी और तुम्हारे लिए भी। वे कहते हैं कि समाजवाद विदेशी चीज है, लेकिन पार्सन्स में विदेशी क्या है? ...यह मत सोचना कि पार्सन्स कोई गोबरगणेश है। उसकी समझदारी ठण्डी और तार्किक है। मजदूर आन्दोलन और समाजवाद पर जो कुछ भी उसे मिल सका वह सब उसने पढ़ रखा है। बात करता है तो उसमें विचार होते हैं। मेरा उन विचारों से तीखा विरोध है। मैं कहता हूं वह गलत है, खतरनाक ढंग से गलत। जो कुछ हुआ क्या वह साबित नहीं करता कि वह गलत था? उसके लिए तो बस एक ही हल है, कि मजदूर उठ खड़े हों और जमीन पर, उत्पादन की अनुमति दे दी थी। ये मित्र और सम्बन्धी यदि चाहें तो उन्हें सार्वजनिक अंत्येष्टि करने की भी इजाजत थी। मेयर रोश ने घोषणा कर दी थी कि वाइल्डहाइम कब्रगाह जाते हुए मातमी जूलूस किन-किन सड़कों से गुजर सकता था। यह सब बारह से दो के बीच होना था। सिपर्फ मातमी संगीत बज सकता था। हथियार नहीं ले जाये जा सकते थे, झण्डे और बैनर लेकर चलना मना था। अखबारों के मुताबिक हालांकि ये लोग समाज के घोषित दुश्मन थे, अपराधी और हत्यारे थे, फिर भी हो सकता था कि अंत्येष्टि में शमिल होने के लिए कुछ सौ लोग चले आयें। और संविधान के उस हिस्से के अनुसार जो धार्मिक स्वतंत्रता की गारण्टी देता है, इस अंत्येष्टि की इजाजत देना न्यायसंगत ही था।

इतवार को जज ने पत्नी से कहा कि वह बाहर टहलने जा रहा है। हालांकि एम्मा को शक था कि वह टहलते हुए कहां जायेगा पर वह कुछ बोली नहीं। न ही उसने यह कहा कि इतवार की सुबह उसके अकेले बाहर जाने की इच्छा कुछ अजीब थी। लेकिन दरअसल, यह कोई ताज्जुब की बात नहीं थीं, जुलूस के रास्ते की ओर जाते हुए जज ने महसूस किया कि वह तो हजारों-हजार शिकागोवासियों में से बस एक है। और फिर ऐसा लगने लगा मानो करीब-करीब आधा शहर शिकागो की उदास, गन्दी सड़कों के दोनों ओर खड़ा जुलूस की प्रतीक्षा कर रहा है।

सुबह ठण्डी थी और वह यह भी नहीं चाहता था कि लोग उसे पहचानें। इसलिए उसने कोट के कालर उठा लिए

(शेष पेज 5 पर जारी)

(पेज 4 से आगे)

अल्बर्ट पार्सन्स और शिकागो के शहीद मजदूर...

के साधनों पर, कारखानों पर, स्कूलों और न्यायालयों पर कब्जा कर लें। मेरे ख्याल से यह पागलपन है। सो तुम देख ही रहे हो कि मैं भी उसके खिलाफ हूं। स्पाइस और दूसरों के भी खिलाफ हूं। लेकिन चूंकि मैं उनसे सहमत नहीं, क्या सिर्फ इसीलिए उन्हें मर जाना चाहिए, कत्ल कर दिया जाना चाहिए?

"तुम पूछ सकते हो कि अगर पार्सन्स ऐसा मानता था तो उसे आठ घण्टे काम के दिन के लिए–मजदूरों की हर तरक्की और हर मांग के लिए इतनी कठिन लड़ाई लड़ने की क्या गरज थी। बहुत दिलचस्प बात है यह। मैंने खुद पार्सन्स से यह पूछा था। लेकिन उसके लिए इसमें कोई अन्तरविरोध नहीं था। कैसे? वो इस तरह कि मजदूरों की हर उपलब्धि उसके अपने लक्ष्य के लिए और उनके लक्ष्य के लिए एक उपलब्धि थी। मैं यह बताने के लिए इसे कह रहा हूं कि वह आदमी जो कहता था, उसे ही जीता था। पार्सन्स सिर्फ एक है, बस एक।

"मैं और बहुत कुछ बता सकता हूँ। पार्सन्स के बारे में इधर-उधर की बातों में सारा दिन गुजार सकता हूँ। पर बहुत वक्त नहीं है आज। सिर्फ डेढ़ घण्टे और हैं। इसलिए उस आदमी की बात से शुरू करके देखें कि आखिर हुआ क्या था।

"तुम्हें याद है आज से डेढ़ साल पहले हमने तय किया था कि एक दिन अमेरिकी मजदूरों को समर्पित किया जाये, एक दिन जो हमारा होगा, जो हमारी एकता और आठ घण्टे काम के संघर्ष में हमारे दृढ़संकल्प का प्रतीक होगा। हमने पहली मई का दिन चुना। कसम से, तुमने सोचा होगा कि हमने अपने लिए एक दिन, अपने लिए एक छुट्टी मांगकर देश की बुनियाद ही नष्ट कर दी। तुम्हें याद होगा कि जैसे-जैसे दिन करीब आया, क्या हुआ। पिंकरटन की पूरी फौज शिकागो में उमड पडी। पलिस वाले सर से पांव तक हथियारों से लैस हो गये। सड़कों पर घूमने वाले सारे शोहदों को हमारे खिलाफ तैनात कर दिया गया। नेशनल गार्ड को सतर्क कर दिया गया। यहां तक कि शिकागो में शान्ति बनाये रखने के लिए फौज की टुकड़ियों की मांग की गयी। लेकिन क्या हमसे शान्ति को खतरा था? हमने तो बस आठ घण्टे काम के आन्दोलन के प्रति अपनी एकजुटता प्रदर्शित करने के लिए एक दिन मांगा था। और वह शनिवार आया और बीत गया। कोई गड़बड़ी नहीं हुई। गड़बड़ी तो हमारी दुश्मन थी। हमें अपना उद्देश्य पता था। हम सारे देश में संगठित थे – हिंसा से हमें क्या लाभ मिलता?

"लेकिन 3 मई को, सोमवार के दिन एक बुरी बात हो गयी। तुम जानते ही हो इसके बारे में, पर मैं हर चीज को सिलसिलेवार रखना चाहूंगा। मैकार्मिक कारखाने पर आयोजित प्रदर्शन सिर्फ लम्बर शोवर्स यूनियन का ही नहीं था, वहां मैकार्मिक कारखाने के भी एक हजार से ऊपर हड़ताली मजदूर थे। हालांकि आगस्त स्पाइस वहां बोला था पर उसने गड़बड़ी का नारा नहीं दिया था। उसने एकता के लिए आह्वान किया था। यह अपराध है क्या? गड़बड़ी तो तब शुरू हुई जब हड़ताल भेदिए कारखाने से बाहर जाने लगे। हड़तालियों ने उन्हें देख लिया और बुरा-भला कहना, गालियां देना शुरू कर दिया जो यहां दोहराने लायक नहीं है। उस दृश्य की कल्पना करो। दो यूनियनों के छः हजार हड़ताली मजदूर बाहर सभा कर रहे हैं और उनकी नजरों के सामने से हड़ताल भेदिए चले जा रहे हैं। मैंने देखा वहां क्या हुआ। मैकार्मिक के हड़ताली कारखाने की ओर बढ़ने लगे। किसी ने उनसे कहा नहीं था, किसी ने उन्हें उकसाया नहीं था। उन्होंने सुनना बन्द कर दिया था और फाटकों की ओर बढ़ रहे थे। हो सकता है उन्होंने कुछ पत्थर उठा रखे हों, हो सकता है उन्होंने भद्दी बातें कहीं हो –लेकिन उनके कुछ करने से पहले ही कारखाने की पुलिस ने गोलियां चलानी शुरू कर दीं। हे भगवान, लगता था जैसे कोई युद्ध हो। हड़ताली निहत्थे थे और पुलिस मानो चांदमारी कर रही हो, पिस्तौलें हाथ भर की दूरी पर, राइफलें भी तनी हुई थीं – धांय, धांय, धांय...

"लोगों का कहना है कि कारखाने ने कुमुक मांगी थी। अगर ऐसा होता तो पुलिस आने में कुछ वक्त लगता, लगता या नहीं? लेकिन चंद मिनटों में पुलिस वालों से लदी एक गश्ती वैगन आ धमकी और उनके पीछे दौड़ते हुए आयी दो सौ हथियारबन्द आदमियों की टुकड़ी।

"ऐसा दृश्य पुरानी दुनिया में सम्भव था, यहां नहीं। मजदूर ऐसे गिर रहे थे जैसे लड़ाई का मैदान हो। जब उन्होंने टिक कर खड़े होने की कोशिश की तो पुलिस वाले चढ़ दौड़े और लाठियों से पीटकर उन्हें अलग कर दिया। जब वे तितर-बितर होकर दौड़े तो पुलिस वालों ने उनका पीछा किया, पीछे से लाठियां बरसायीं। देखा नहीं जाता था। यह क्रूरता थी, वहशीपन था। भाग जाने का मन कर रहा था। लगता था कै हो जायेगी। और यही किया मैंने। पर स्पाइस भागकर 'आरबाइटेर जाइटुंग' 'मजदूर अखबार' के दफ्तर पहुंचा और इसका विरोध करने के लिए हे मार्केट चौराहे पर मीटिंग की फौरी खबर चारों ओर भिजवायी। यह थी शुरुआत। इसलिए शुरू हुआ यह सब क्योंकि हम अपने दिन, मई दिवस पर शान्त और संयमित थे और वे इसे गवारा नहीं कर सकते थे। बन्दूकों से, बन्दूकों से वे असली गड़बड़ी फैला सकते थे और तब लोग चीख-चीखकर क्रान्ति की बात करते।

"पर असल बात यह है कि पार्सन्स वहां नहीं था। ठीक वैसे ही जैसे पार्सन्स हे मार्केट में नहीं था जब बम फेंका गया। सिर्फ मैकार्मिक के और लकड़ी ढोने वाले मजदूर ही हडताल पर नहीं थे। पुलमैन वाले, ब्रुन्सविक वाले, पैकिंग कारखानों के मजदूर, सभी हड़ताल पर थे और शिकागो ही नहीं सेण्ट लुई, सिनसिनाटी, न्यूयार्क, सान फ्रांसिस्को हर जगह हड़ताल थी। पार्सन्स कहीं भी हो सकता था, पर वह यहां नहीं था। पार्सन्स थका हुआ और बीमार था। वह घर आता और बिस्तर पर ढह जाता। मजदूरों के संगठनकर्ता की जिन्दगी ज्यादा नहीं चलती। पहले पेट जवाब देता है, फिर टांगें और जब आपको अच्छी तरह पीटा और लाठियों से कूंचा जा चुका हो तब सिर और दिमाग भी जवाब देने लगते हैं।

"तो उन्होंने अगले दिन हे मार्केट में मीटिंग तय की। हे मार्केट को उन्होंने इसलिए चुना था क्योंकि वह जगह बड़ी थी। स्पाइस तो जैसे पागल हो उठा था। घायल और मर रहे आदमियों की तस्वीर उसके दिमाग से उतरती ही नहीं थी। वह सोच रहा था कि हजारों-हजार मजदूर विरोध प्रदर्शन में आ जायेंगे। लेकिन मैकार्मिक तो एक विराट संघर्ष का छोटा सा हिस्सा भर था और मजदूरों की हार तो शुरू हो चुकी थी। हर जगह उन्हें कुचला और तोड़ा जा रहा था। एक और मीटिंग से क्या हो जाता? पर स्पाइस को कम मत समझना। बहुत तेज आदमी था, और ईमानदार भी। विदेशों में जन्मे मजदूरों के बीच उसकी वही हैसियत थी जो अमेरिकी मजदूरों के बीच पार्सन्स की थी। वह सोचता था कि यह एक ऐसा मौका है जिसे गंवाना नहीं चाहिए। अगर हे मार्केट में बीस हजार मजदूर इकठा हो जाते हैं तो 'काम के घण्टे आठ' आन्दोलन का रुख बदल सकता है। शायद – पता नहीं, जैसा मैं कह रहा था, मैं इन लोगों से सहमत नहीं हूं। क्रान्ति की बात से मेरी लड़ाई आगे नहीं बढ़ती, बाधित ही होती है। मैं तो ऐसा ही समझता हूं।

"लेकिन अगली शाम को हे मार्केट में बीस हजार लोग नहीं इकट्ठा हुए। जब स्पाइस वहां पहुंचा तो बहुत थोड़े लोग थे। शाम गुजरने के साथ लोग बढ़े तो, पर कभी भी भीड़ तीन हजार तक भी नहीं पहुंची। चूंकि भीड़ कम थी इसलिए उन्होंने मीटिंग की जगह हे मार्केट से बदलकर दे प्लेन स्ट्रीट कर दी, लेक और रैंडोल्फ के बीच। लेकिन मैं तुम्हें पार्सन्स के बारे में बता रहा हूं। सिर्फ इसीलिए तो आज सुबह तुम्हारा वक्त जाया कर रहा हूं। मैं तुम्हें बता रहा हूं कि कैसे पार्सन्स वहां नहीं था, कैसे उसे मीटिंग के बारे में पता तक नहीं था। वैसे तो सैम फील्डेन भी हे मार्केट की मीटिंग के बारे में नहीं जानता था।

"लेकिन पार्सन्स पर लौटें। उसने दो मई को शिकागो छोड़ दिया था और भाषण देने सिनसिनाटी शहर चला गया था। तीन मई के पूरे दिन जब मैकार्मिक कारखाने पर यह भयानक घटना घट रही थी, पार्सन्स यहां था ही नहीं। वह चार की सुबह घर पहुंचा। वह सारी रात सोया नहीं था। वह थकान से निढाल हो रहा था जब लूसी उसे सुना रही थी कि यहां क्या हुआ। जो कुछ खुद उसने सिनसिनाटी में देखा था उससे कुछ भिन्न नहीं था यह। मालिक लोग नाराज थे। उनको चुनौती देने की जुर्रत करने वाले गन्दे राक्षस को कुचल डालना जरूरी था, और वे उसको कुचलने में लगे हुए थे। और हर कहीं वह टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। भूखे, थके, निहत्थे आदमी की गैटलिंग बन्दूक के सामने क्या बिसात थी!

पार्सन्स पत्नी का बयान सुनता रहा। अपने दोनों बच्चों के साथ खेलता रहा। उसने पत्नी की दी हुई काफी पी, पावरोटी का एक टुकड़ा खाया। उसने लूसी से कहा, 'हमें कुछ करना ही होगा।' पर करने को था ही क्या? वह बोली, 'बहुत थक गये हो। आज रात मीटिंग नहीं कर पाओगे।' वह हे मार्केट की मीटिंग की बात नहीं कर रही थी। उस मीटिंग के बारे में तो वह जानती ही नहीं थी। 'मीटिंग तो करनी ही होगी', पार्सन्स ने कहा। पार्सन्स के नेतृत्व में काम करने वालों को हम लोग 'अमेरिकी ग्रुप' कहते थे क्योंकि उनमें से ज्यादातर अमेरिका में पैदा हुए मजदूर थे। उसने तय किया कि मीटिंग होगी और बेहद थकान के बावजूद 'डेली न्यूज' में घोषणा करवाने चला गया। फिर वह घर लौटा और बच्चों के साथ थोड़ी देर और खेला। फिर सो गया। जागने पर वह काफी बेहतर था। पहले जैसा, हंसता-हंसाता। लूसी कहती है कि उसने हार की नहीं जीत की बातें कीं, कहा कि उसके बच्चे एक ऐसे अमेरिका में बड़े होंगे जो दुनिया को न्याय और आजादी की ओर ले जायेगा।

"शाम को वह, लूसी और दोनों बच्चे मीटिंग में गये। हमेशा की तरह दोनों साथ-साथ चल रहे थे, प्रेमियों की तरह एक दूसरे को निहारते हुए।

"इस बीच हे मार्केट की मीटिंग छोटी तो थी ही, शुरू ही नहीं हो रही थी। कैसी बुरी रात थी! डरावनी, कभी भी पानी बरसने का खतरा बना हुआ था। पानी के डर से ही काफी लोग नही आये थे। जो आये थे वे इंतजार कर रहे थे कि कब मीटिंग शुरू हो और खत्म हो। लेकिन जानते ही हो, सब पार्सन्स पर निर्भर थे। पर पता चला कि हरेक ने पार्सन्स को मीटिंग में लाने की बात किसी और पर छोड़ रखी है। स्पाइस पार्सन्स के बिना शुरू नहीं करना चाहता था और जब किसी ने 'डेली न्यूज' की घोषणा के बारे में बताया तो स्पाइस बोला कि वह खुद पार्सन्स को लेने जायेगा। लेकिन ऐसा करने से तो मीटिंग की जान ही निकल जाती। उन लोगों ने स्पाइस को बोलने के लिए तैयार कर लिया और कोई दूसरा पार्सन्स को ढूंढने चला गया। स्पाइस ने बोलना शुरू किया। उसने जो कहा उसे दोहराने की जरूरत नहीं। अखबारों में काफी छप चुका है। लेकिन यह याद करने की जरूरत है कि उसने मुख्य तौर पर 'काम के घण्टे आठ' आन्दोलन की बात की। उसने कहा कि चूंकि मजदूरों पर लाठियां-गोलियां बरसायी गयी हैं, इसलिए सब खत्म नहीं हो जाना चाहिए। हमें और एकजुट होना होगा, और कठिन संघर्ष करना होगा। और उसने बताया कि पिछले दिन मैकार्मिक पर क्या हुआ था। इस बीच कोई दूसरी वाली मीटिंग में पार्सन्स के पास पहुंच चुका था। वहां फील्डेन भी था। ...पार्सन्स बुरी तरह थका हुआ था पर उसने कहा कि वह आयेगा और फिर बोलेगा। फील्डेन भी उसके साथ आया। फील्डेन लम्बा-तड़ंगा है। यार्कशायरवालों की तरह उसे गुस्सा देर से आता है पर चारों ओर जो कुछ हो रहा था वह उससे भीतर ही भीतर उबल रहा था। कड़वाहट भर गयी थी उसमें। और जब वह बोलता था तो यह कड़वाहट बाहर आ जाती थी।

"खैर! पार्सन्स पत्नी और दोनों बच्चों के साथ दे प्लेन स्ट्रीट गया जहां स्पाइस की मीटिंग थी। बच्चे तब तक थक चुके थे। एक लूसी की गोद में था, दूसरा पार्सन्स की।

"अभी भी काले आसमान के नीचे करीब दो हजार आदमी पार्सन्स का इन्तजार कर रहे थे। तुम नहीं समझोगे। पर मैंने दो-दो घण्टे खड़े रहकर पार्सन्स के बोलने का इन्तजार किया है। वहां दो गाड़ियां थीं। एक की छत को वक्ता मंच की तरह इस्तेमाल कर रहे थे और दूसरी पर लोग बैठे थे, पर उन्होंने लूसी पार्सन्स और बच्चों के लिए जगह बना दी। पार्सन्स को देखकर स्पाइस को राहत मिली। तुम्हीं सोचो, कैसा लगेगा जब तुम्हारी नजर में इतना महत्वपूर्ण मौका हो और भीड़ खिसकना शुरू कर दे।

"स्पाइस को ऐसा ही लग रहा था। तुम तो खुद ही काफी दिनों से राजनीति में रहे हो। समझ सकते हो कि अच्छे से अच्छा आदमी भी ध्वस्त हो जायेगा अगर श्रोता मीटिंग छोड़कर जाने लगें– एक-एक करके नहीं, झुण्डों में। बहरहाल, जब पार्सन्स बोलने के लिए खड़ा हुआ तो नौ बज चुके थे। लोग रुक गये। उसकी हालत के बारे में सोचो। तीस घण्टों से वह सोया नहीं था। एक मीटिंग में बोलकर सीधे वहां पहुंचा था। वह सब कुछ जिसके लिए वह लड़ता रहा था, उसे अपनी आंखों के सामने टूटते, ध्वस्त होते देख रहा था। फिर भी वह बोला, और अच्छी तरह बोला। उसने 'आठ घण्टे काम' आन्दोलन से बात शुरू की, फिर मजदूरों के बारे में बोला। मैं नहीं समझता, अमेरिका में मजदूरों के बारे में कोई पार्सन्स से ज्यादा जानता होगा। वह इजारेदारी के बढ़ने के बारे में बोला–ये सब तो ठीक है। तुमने उसका वक्तव्य पढ़ा है, तुम जानते हो वह किन चीजों के बारे में बोला। लेकिन उसके भाषण के वे पाठ झूठे हैं, सरासर झूठे। उसके दिमाग में जो बातें आती गयीं, वह बोलता गया। कोई लिखा हुआ भाषण नहीं था और न ही किसी ने उसकी बातों को नोट किया था। हां, अगले दिन एक भाषण का आविष्कार कर लिया गया, पर वह पार्सन्स का नहीं था।

"और फिर उसने बात खत्म की और फील्डेन का परिचय कराया। तुमसे बातें करते हुए फील्डेन की बातों को याद करना दिलचस्प है क्योंकि फील्डेन कानून के बारे में बोला था। धनिकों का कानून, गरीबों का नहीं, धनिकों की अदालतें, गरीबों की नहीं। ठीक है, ठीक है, मैं पार्सन्स के बारे में ही बताता हूं। बैठो, और मेरी बात सुनो, या हो सकता है तुम मेरी बात न सुनो और सोचो कि यह बेवकूफ बढ़ई बेकार तुम्हारा वक्त जाया कर रहा है। लेकिन लेबर पार्टी में इस बढ़ई का राजनीतिक प्रभाव है, तुम्हें उसकी बातें सुननी चाहिए और उसकी भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचानी चाहिए। ठीक है, फिर मुझे अपनी तरह से बताने दो।

"फील्डेन ने बोलना शुरू किया तो पार्सन्स गाड़ी के पास गया और छोटे बच्चे को उठा लिया। तभी बारिश शुरू हो गयी। एक बच्चा रोने लगा। जो कुछ हुआ उसकी रोशनी में इस पर गौर करना। बच्चे को गोद में लिए हुए पार्सन्स मंच तक गया जहां से फील्डेन बोल रहा था। उसने कहा कि बारिश हो रही है, क्यों न वे जेफ हाल में चले चलें जहां अकसर उनकी मीटिंगें हुआ करती थीं। उसने ऐसा इसलिए सोचा क्योंकि बच्चा था गोद में और वह खुद बेहद थका हुआ था। लेकिन दो हजार लोगों को सड़कों से होकर शान्ति के साथ ले जाना और हाल में ले जाकर व्यवस्थित ढंग से बैठाना आसान नहीं होता है। 'मैं बस दो मिनट में खत्म करता हूं', फील्डेन बोला। पार्सन्स ने सिर हिलाया पर वह बारिश में वहां खड़ा नहीं रह सकता था बच्चों के साथ। भीड़ छंट रही थी। उस वक्त तक वहां करीब छह-सात सौ लोग होंगे, अभी भी बारिश में खड़े सुनते हुए।

"तो पार्सन्स, लूसी, दोनों बच्चे और एक दोस्त मीटिंग से जेफ हाल चले गये। वे थोड़ी देर के लिए ही गये थे वहां, कुछ लोगों से मिलने, और उसके बाद उन्हें घर जाना था। लेकिन धमाका उन्होंने वहीं पर सुना।

"और वह धमाका, वह बम–जानते ही हो कैसे हुआ, या हो सकता है न जानते हो। बहुत दिन बीत गये, हो सकता है मेरे अच्छे दोस्त को भूल गया हो। फील्डेन बोल ही रहा था कि वार्ड और बोनफील्ड के नेतृत्व में दो सौ पुलिसवाले भीड़ को ठेलते हुए आ धमके। क्यों? कैसे? किसलिए? उस शान्त, व्यवस्थित मीटिंग के लिए जो खुद बिखर रही थी? मुश्किल से पांच सौ लोग बचे होंगे उस वक्त तक। सिपाहियों के आगे खड़ा वार्ड चिल्लाने लगा कि वे फौरन तितर-बितर हो जायें। फील्डेन क्या करता? बोलना बन्द करके वह गाड़ी से उतरने लगा। भीड़ सड़क के दूसरी ओर जाने लगी। तभी बम फेंका गया, भगवान जाने कहां से। वह पुलिस वालों के सामने ही फटा। एक वहीं मर गया, कई घायल हुए। किसने फेंका था बम? डेढ़ साल से इस दुख की नगरी में हमने इसके सिवा कुछ नहीं सुना है कि बम किसने फेंका। भगवान या शक्ति या भाग्य जो भी हो, मैं उसकी कसम खाकर कहता हूं जज, कि हमारे किसी आदमी ने बम नहीं फेंका। हां, यही राय है मेरी। और मेरे पूर्वाग्रह हैं। मैं एक मजदूर हूं और निश्चित तौर पर मेरे पूर्वाग्रह हैं। पर अब जबकि कुछ घण्टों में पार्सन्स मरने जा रहा है, मैं यह कसम खाकर कहता हूं। मुझे हिंसा से नफरत है। मैं कसम खाकर जो कह रहा हूँ, उस पर मुझे विश्वास है। उन्होंने–हमारे दुश्मनों ने फेंका था बम। तब से अब तक जो कुछ हुआ है उस पर गौर करो और सोचो कि क्या इसके अलावा कोई और बात हो सकती थी? सोचो कि बम फेंके जाने के तुरन्त बाद क्या हुआ, कैसे पुलिसवालों ने बन्दूकें तान लीं और गोलियां चलानी शुरू कर दीं। इसके आगे तो एक दिन पहले की मैकार्मिक की घटना मामूली पड़ गयी थी। उन्होंने पागलों की तरह गोलियां चलायीं। उन्होंने मजदूरों को, उनकी बीवियों को और बच्चों को भून डाला। हम निहत्थे थे। हमारी तरफ से कोई गोली नहीं चली। लेकिन पुलिस गोलियां बरसाती रही। भीड़ तितर-बितर हो गयी थी और चीखते हुए चारों ओर भाग रही थी।

"यह है सच्चाई", उस छोटे से बढ़ई ने कहा, "मैंने वहां मौजूद सैकडो़ लोगों से यही कहानी सुनी है। यही सच्चाई है।"

•

उन्हें शुक्रवार को फांसी दी गयी। अगले दिन अखबारों में फांसी के विस्तृत ब्योरे छपे थे, और थे ढेरों सम्पादकीय–मरने वाले व्यक्तियों पर, कानून और व्यवस्था पर, जनतंत्र पर, संविधान और इसके ढेरों संशोधनों पर–जिनमें से कुछ को 'बिल आफ राइट्स' कहा जाता है–और क्रांति, गणतंत्र के संस्थापकों और गृहयुद्ध के बारे में। इसी के साथ छपी थीं अंत्येष्टि की सूचनाएं। शहर के अधिकारियों ने सम्बन्धियों और मित्रों को पांचों मृत व्यक्तियों–लिंग, जो अपनी कोठरी में मर गया था, पार्सन्स, स्पाइस, फिशर और एंजिल के पार्थिव शरीर प्राप्त कर लेने

(पेज 8 पर जारी)

(पेज 1 से आगे)

वर्ग चेतन मज़दूरों को अपनी एकता हासिल करनी होगी...

कर दे। लेकिन किसी भी पूंजीवादी व्यवस्था में मज़दूर वर्ग द्वारा लड़कर हासिल किये जाने वाले राजनीतिक अधिकारों की एक सीमा होती है, जो धीरे-धीरे मज़दूर वर्ग के सामने साफ होती जाती है। पूंजीवादी जनवाद का असली चेहरा तब पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व के रूप में सामने आ जाता है। तब मजदूर वर्ग इस सच्चाई को समझ लेने की स्थिति में आ जाता है कि असली सवाल पूंजीवादी उत्पादन संबंधों को ही बदल डालने का है और यह काम पूंजीवादी राज्यसत्ता को चकनाचूर किये बिना अंजाम नहीं दिया जा सकता। राजनीतिक संघर्ष करते हुए ही मज़दूर वर्ग एक संगठित वर्ग के रूप में एकजुट होकर पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध लड़ना सीखता है, उसे पूंजीवादी व्यवस्था के असली रूप और उसकी सीमाओं का अहसास होता है और वह उन सीमाओं को तोड़ने के लिए आगे कदम बढ़ाता है। राजनीतिक संघर्ष करते हुए ही मज़दूर वर्ग अपने ऐतिहासिक मिशन से परिचित होता है, सर्वहारा क्रान्ति की अपरिहार्यता और अवश्यंभाविता से परिचित होता है, उस क्रान्ति के विज्ञान को आत्मसात करता है और समाजवादी व्यवस्था के अग्रदूत की भूमिका निभाने के लिए अपने को तैयार करता है।

आर्थिक संघर्ष मज़दूर वर्ग का बुनियादी संघर्ष है। इसके जरिए वह लड़ना और संगठित होना सीखता हैं। मुख्यत: ट्रेड यूनियनें इस संघर्ष के उपकरण की भूमिका निभाती हैं और इस रूप में वर्ग संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला की भूमिका निभाती हैं। लेकिन आर्थिक संघर्ष मज़दूर वर्ग को सिर्फ कुछ राहत, कुछ रियायतें और कुछ बेहतर जीवनस्थितियां ही दे सकते हैं। वे पेशागत संकुचित मनोवृत्ति को तोड़कर मज़दूरों को उनकी व्यापक वर्गीय एकजुटता की ताकत का अहसास नहीं करा सकते। न ही वे उन्हें अपनी मुक्ति की सम्भाव्यता और पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता का अहसास करा सकते हैं। ऐसा केवल राजनीतिक मांगों पर संघर्ष के द्वारा ही संभव है।

मज़दूर आन्दोलनों का इतिहास और मज़दूर क्रान्ति का विज्ञान हमें बताता है कि आर्थिक संघर्ष कभी भी अपने आप, स्वयंस्फूर्त ढंग से राजनीतिक संघर्ष में रूपान्तरित नहीं हो जाते। आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ शुरू से ही मजदूर वर्ग राजनीतिक संघर्षों को भी चलाये, तभी मजदूर वर्ग पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध अपने संघर्ष को आगे बढ़ा सकता है। राजनीतिक संघर्ष जब तक रोजमर्रे के संघर्षों के अंग के तौर पर प्रारंभिक अवस्था में होते हैं तभी तक ट्रेड यूनियनों के माध्यम से उनका संचालन संभव होता है। एक मंजिल आती है जब राजनीतिक संघर्ष के लिए सर्वहारा वर्ग के किसी ऐसे संगठन की उपस्थिति अनिवार्य हो जाती है जो सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की सुसंगत समझदारी से लैस हो। यह संगठन पूंजीवाद के आर्थिक ताने-बाने, राजनीतिक तंत्र और पूरी सामाजिक संरचना को भली भांति समझने के बाद उसके विकल्प का खाका पेश करता है; पूंजीवादी राज्यसत्ता को ध्वस्त करके सर्वहारा राज्यसत्ता की स्थापना करने तथा समाजवाद का निर्माण करने के कार्यक्रम और रास्ते से सर्वहारा वर्ग को शिक्षित करता है और उस रास्ते पर आगे बढ़ने में सर्वहारा वर्ग को नेतृत्व देता है। विश्व मज़दूर आन्दोलन के इतिहास में सर्वहारा वर्ग के हिरावल के रूप में ऐसी सर्वहारा पार्टी की धारणा के मूर्त रूप लेते ही ट्रेड यूनियन ऐतिहासिक रूप से "पिछड़े" वर्ग-संगठन की स्थिति में पहुंच गयी। वर्ग-संघर्ष की प्राथमिक पाठशाला वह आज भी है, लेकिन वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा के मार्गदर्शन में संगठित पार्टी ही पूंजीवादी व्यवस्था का नाश करके सर्वहारा वर्ग की आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक मुक्ति के संघर्ष को अंजाम तक पहुंचा सकती है, यही सर्वहारा क्रांति के विज्ञान की- मार्क्सवाद- लेनिनवाद की शिक्षा है और बीसवीं सदी के दौरान इतिहास इसे सत्यापित भी कर चुका है।

मज़दूर क्रान्ति की विचारधारा मज़दूर आन्दोलन में अपने आप नहीं पैदा हो जाती। उसे उसमें बाहर से डालना पड़ता है। यह काम मज़दूर वर्ग के हिरावल दस्ते के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी के संगठनकर्ता-कार्यकर्ता अंजाम देते हैं। वे मजदूरों की रोज़मर्रे की लड़ाइयां संगठित करते हुए, पहली ही मंज़िल से उनके बीच लगातार राजनीतिक प्रचार एवं शिक्षा का काम चलाते हैं, आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ राजनीतिक संघर्ष भी संगठित करते हैं, उन्हें क्रमश: उन्नत और व्यापक बनाते हैं, इस प्रक्रिया के दौरान मज़दूरों के सर्वाधिक उन्नत तत्वों को विचारधारा से लैस करके हरावल दस्ते (पार्टी) में भरती करते हैं तथा उनके माध्यम से ट्रेड यूनियनों व अन्य जनसंगठनों मोर्चों में पार्टी के विचारधारात्मक मार्गदर्शन एवं राजनीति का वर्चस्व (हेजेमनी) स्थापित करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं।

अर्थवादी मज़दूर वर्ग को तरह-तरह से आर्थिक संघर्षों तक ही सीमित रखने की कोशिश करते हैं, वे मज़दूर वर्ग को राजनीतिक संघर्षों से दूर रखने की या फिर इनके मामले में संयम बरतने की सीख देते हैं। वे यह भी दलील देते हैं कि मज़दूर वर्ग की विचारधारा मज़दूर आन्दोलन के भीतर से स्वयंस्फूर्त ढंग से पैदा हो जाती है। इस तरह वे मज़दूर वर्ग के बीच उसके हिरावल दस्तों (पार्टी तत्वों) द्वारा सचेतन तौर पर संगठित की जाने वाली राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन की कार्रवाई को अनुपयोगी बताने की कोशिश करते हैं वे ट्रेड यूनियनवादी भी इन्हीं के सगे-सहोदर होते हैं (प्राय: ये दोनों एक ही होते हैं) जो अपनी सारी कवायद ट्रेड यूनियन की चौहद्दी तक ही सीमित रखते हैं और इस चौहद्दी के बाहर मज़दूर चेतना के विकास को हर चन्द कोशिश करके रोकते हैं, क्योंकि तब उनका सारा धन्धा ही चौपट हो जाने का खतरा रहता है। जो संसदीय वामपंथी क्रान्ति के बजाय बुर्जुआ संसद और चुनावों के ही जरिए समाजवाद ला देने का धोखा भरा प्रचार करते है, उनकी राजनीति अर्थवाद और ट्रेड यूनियनवाद से ही नाभिनालबद्ध होती है। अपने मूल रूप से ये सभी सुधारवाद की ही विविध अभिव्यक्तियां है जो मज़दूर वर्ग को यह धोखा भरी नसीहत देती हैं कि क्रान्ति के बजाय इसी व्यवस्था में सुधारों का पैबन्द लगाकर काम चलाया जा सकता है। संसदीय वामपंथ और अर्थवाद की राजनीति चूंकि मार्क्सवाद के सारतत्व (वर्ग संघर्ष और सर्वहारा अधिनायकत्व) में "संशोधन" (यानी वास्तव में तोड़-मरोड़) करने की कोशिश करती हैं, अत: उसे संशोधनवाद भी कहा जाता है। संशोधनवाद, अर्थवाद, ट्रेड यूनियनवाद जैसी धाराएं मज़दूर वर्ग को सर्वहारा क्रान्ति के मूल विचार से भटकाकर, पूंजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम करती हैं। इतिहास बताता है कि मज़दूर आन्दोलन के इन विभीषणों, जयचन्दों, मीरजाफरों ने पूंजीवाद की इतनी सेवा की है और इतने नाज़ुक मौकों पर उसकी मदद की है कि उसे याद करके पूंजीपति वर्ग की आंखें भर आयें यहां तक कि जिस समाजवाद का विश्व-पूंजीवाद के बाहरी हमले कुछ न बिगाड़ सके, उसे भी ध्वस्त करने में इन भितरघातियों की ही भूमिका केन्द्रीय रही।

•

उपरोक्त संक्षिप्त चर्चा के आलोक में मज़दूर साथियों के लिए यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए कि मई दिवस की परम्परा आज भांति-भांति के नकली वामपंथी मदारियों के हाथों किस कदर लांछित और कलंकित हो रही है। मई दिवस दुनिया के मज़दूरों के राजनीतिक चेतना के युग में-राजनीतिक संघर्षों के युग में प्रवेश का प्रतीक विषय है। लेकिन आज वे संसदीय वामपंथी, अर्थवादी और ट्रेडयूनियनवादी मई दिवस मनाते हैं, जो मज़दूर वर्ग को आर्थिक संघर्षों और संसदीय राजनीति की भूल भूलैया में फंसाये रखना चाहते हैं। हमें जी-जान से जूझकर उस मुकाम तक पहुंचने की तैयारी करनी होगी जब मज़दूर वर्ग आगे बढ़कर इन भांड़ों-विदूषकों के मुखौटे नोच ले और इनके हाथों से मई दिवस का परचम छीन ले।

बेशक हम एक ऐसे समय में जी रहे हैं जब विश्व स्तर पर क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है। सर्वहारा क्रान्तियों के जो प्रथम संस्करण बीसवीं सदी में निर्मित हुए थे, वे भविष्य के लिए कीमती सबक देने के बाद, टूट- बिखर चुके हैं। श्रम और पूंजी के बीच ऐतिहासिक युद्ध का पहला चक्र श्रम-पक्ष की पराजय के साथ पूरा हुआ है। लेकिन यह इतिहास का अन्त नहीं है। पूंजीवाद अजर-अमर नहीं है। इतिहास का तर्क उसके भीतर समाजवाद के और अधिक शक्तिशाली बीजों को विकसित कर रहा है। श्रम और पूंजी के बीच के विश्व ऐतिहासिक महायुद्ध का दूसरा और निर्णायक चक्र इक्कीसवीं सदी में लड़ा जायेगा। इतिहास का यही तर्क है। मानव समाज का गति विज्ञान यही बताता है।

लेकिन साथ ही, आज की इस सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि पूरी दुनिया में और भारत में, मज़दूर वर्ग की संगठित राजनीतिक लड़ाई आज एकदम कमज़ोर पड़ गयी है और एकतरह से पार्श्वभूमि में ढकेल दी गयी है। यदि राजनीतिक संघर्ष कहीं चल भी रहे हैं तो छिटपुट और स्वयंस्फूर्त रूप में और प्राय: उनका अन्त विघटन और पराजय के रूप में हो रहा है। लेकिन गौर से देखें तो उम्मीद की किरणें हमें इसी अंधेरे के भीतर से फूटती दीखती हैं। विश्व स्तर पर जारी उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों ने आज एक के बाद.एक करके मज़दूरों के उन सभी राजनीतिक अधिकारों को छीनकर उसे एकदम कोने में धकेल दिया है, जो उन्होंने एक शताब्दी से भी अधिक लम्बी अवधि के दौरान कठिन संघर्षों और अकूत कुर्बानियों के जरिए हासिल किये थे तरह-तरह की कानूनी बन्दिशों से ये राजनीतिक अधिकार इस हद तक छीन लिये गये हैं कि आर्थिक एवं कानूनी लड़ाइयों का मैदान भी सिकुड़कर एकदम छोटा हो गया है। श्रम कानूनों और श्रम न्यायालयों आदि का कोई मतलब नहीं रह गया है। आर्थिक संघर्षों की सीमाएं जितनी संकुचित हुई हैं, उसी अनुपात में अर्थवादियों और संसदमार्गी वामपंथियों का चरित्र भी साफ हुआ है। क्रान्ति की उम्मीद मेहनतकश जनता भला उनसे क्या पालेगी, जब वे स्वयं की क्रान्ति की बातें करना बन्द कर चुके हैं। विश्व पूंजी अपने ढांचागत संकटों के दबाव से संचालित होकर, अपने सर्वाधिक संगठित हमले के इस दौर में, विविध रूपों में नये सिरे से फासिज्म की शक्तियों को संगठित कर रही है और उसके आगे संसदीय वामपंथी एकदम कागज़ी और दन्तनखहीन साबित हो रहे हैं।

यानी कुल मिलाकर, यदि वस्तुगत परिस्थितियों की बात की जाये तो कहा जा सकता है कि क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन के लिए वे अत्यधिक अनुकूल है अर्थवादी और संसदवादी विभ्रम-मोहभ्रम पैदा कर पाने की गुंजाइशें अत्यधिक कम हो गयी हैं। व्यवस्था स्वयं अपनी चौहद्दियों को लोगों की नजरों के सामने ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट करती जा रही है। सारी समस्या क्रान्ति के सचेतन कारक तत्व के-सर्वहारा वर्ग के हरावल दस्ते के फिर से संगठित होने के मुद्दे पर केन्द्रित है।

हमारे देश में इस समस्या का केन्द्रबिन्दु यह है कि ज्यादातर सर्वहारा क्रान्तिकारी तत्व भी इस केन्द्रीय तत्व को पकड़ नहीं पा रहे है कि नयी सर्वहारा क्रान्ति का हरावल दस्ता अतीत की राजनीतिक संरचनाओं को जोड़-मिलाकर संघटित नहीं किया जा सकता, बल्कि उसका नये सिरे से निर्माण करना होगा। यानी प्रधान पहलू पार्टी-गठन का नहीं, बल्कि पार्टी-निर्माण का है। भारत में अब तक जिसे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर कहा जाता रहा है, वह मूलत: और मुख्यत: विघटित हो चुका है। विभिन्न ग्रुपों के बीच राजनीतिक बहस-मुबाहसा करके एकता बनाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए सर्वहारा वर्ग की एक सर्वभारतीय पार्टी पुनर्गठित कर पाने की प्रक्रिया विगत तीन दशकों के दौरान कहीं नहीं पहुंच सकी है। इसके बुनियादी कारण इस शिविर की और भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन के पूरे इतिहास की विचारधारात्मक कमज़ोरी में निहित रहे हैं, जो अलग से विस्तृत चर्चा की मांग करते हैं। कुछ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन संसदीय मार्ग के राही बनकर 'भूतपूर्व' विशेषण से लैस हो चुके हैं। कुछ ऐसे है जो मुंह से क्रान्ति और वर्ग संघर्ष की बात करते हुए राजनीतिक-सांगठनिक आचरण में सर्वथा सामाजिक-जनवादी दीख रहे हैं और अर्थवादी दलदल में गोते लगा रहे हैं तथा मेंशेविकों से भी घटिया ढंग से सांगठनिक गुंताड़े बिठा रहे हैं। कुछ "वामपंथी" दुस्साहसवाद की राह पर उतना आगे जा चुके हैं कि अब वापसी मुमकिन नहीं और कुछ "वामपंथी" दुस्साहसवाद और जुझारू अर्थवाद की विचित्र, बदबूदार अवसरवादी बिरयानी पका रहे हैं। ज्यादातर संगठन आज भी भूमि क्रान्ति का रट्टा मारते हुए जूते के हिसाब से पैर काटकर पंगु हो चुके हैं और धनी किसानों के आन्दोलनों के पुछल्ले, नरोदवाद के विकृत भारतीय संस्करण बन चुके हैं। कुछ मुक्त चिन्तकों के जमावड़े बन चुके हैं और कुछ रहस्यमय गुप्त सम्प्रदाय। शेष जो नेकनीयत है, उनकी स्थिति आज वामपंथी बुद्धिजीवी ग्रुपों से अधिक कुछ भी नहीं है।

भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों-संगठनों के कमजोर विचारधारात्मक आधार, गलत सांगठनिक कार्यशैली और गलत कार्यक्रम पर अमल की आधी-अधूरी कोशिशों के लम्बे सिलसिले ने आज उन्हें इस मुकाम पर ला खड़ा किया है कि उनके सामने पार्टी के पुनर्गठन का नहीं, बल्कि नये सिरे से निर्माण का प्रश्न केन्द्रीय हो गया है। चीज़ें कभी अपनी जगह रुकी नहीं रहतीं। वे अपने विपरीत में बदल जाती हैं आज अव्वलन तो विचारधारा और कार्यक्रम के विभिन्न प्रश्नों पर बहस-मुबाहसे से एकता कायम होने की स्थिति ही नहीं दीखती और यदि यह हो भी जाये तो एक सर्वभारतीय क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी नहीं बन सकती क्योंकि कुल मिलाकर, घटक संगठनों-ग्रुपों के बोल्शेविक चरित्र पर ही सवाल उठ खड़ा हुआ है। आज भी क्रान्तिकारी कतारों का सबसे बड़ा हिस्सा मा.-ले.ग्रुपों- संगठनों के तहत ही संगठित है। यानी कतारों का कम्पोजीशन (संघटन) क्रान्तिकारी है, लेकिन नीतियों का कम्पोजीशन (संघटन) शुरू से ही ग़लत रहा है और अब उसमें विचारधारात्मक भटकाव गंभीर हो चुका है। इन्हीं नीतियों के वाहक नेतृत्व का कम्पोजीशन ज्यादातर संगठनों में आज अवसरवादी हो चुका है। इस नेतृत्व से 'पालिमिक्स' के जरिए एकता के रास्ते पार्टी-पुनर्गठन की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

भारतवर्ष में सर्वहारा क्रान्तिकारियों की जो नयी पीढ़ी इस सच्चाई की आंखों में आंखे डालकर खड़ा होने का साहस जुटा सकेगी, वही नई सर्वहारा क्रान्तियों के वाहक तथा नई बोल्शेविक पार्टी के घटक बनने वाले क्रान्तिकारी केन्द्रों के निर्माण का काम हाथ में ले सकेगी। वही नया नेतृत्व क्रान्तिकारी कतारों को एक नयी एकीकृत पार्टी के झण्डे तले संगठित करने में सफल हो सकेगा। इतिहास अपने को कभी हू ब हू नहीं दुहराता और यह कि, सभी तुलनाएं लंगड़ी होती हैं-इन सूत्रों को याद रखते हुए हम कहना चाहेंगे कि मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी फिर से खड़ी करने में हमें अपनी पहुंच-पद्धति तय करते हुए रूस में कम्युनिस्ट आन्दोलन के उस दौर से काफी कुछ सीखना होगा, जो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में गुजरा था। बोल्शेविज़्म की स्पिरिट को बहाव करने का सवाल आज का सबसे महत्वपूर्ण सवाल है।

सर्वहा[illegible] के हिरावल दस्ते के फिर से निर्माण [illegible] प्रक्रिया आज प्रारंभिक अवस्था में है, लेकिन वह आगे डग भर चुकी है। इसी प्रक्रिया में, कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी जब मज़दूर वर्ग और अन्य मेहनतकश वर्गों के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार एवं आन्दोलन के कामों को हाथ में लेंगे तो मजदूर वर्ग भी उस ताकत को हासिल करना शुरू कर देगा कि जिसके बूते एक दिन वह आगे बढ़कर संसदीय वामपंथी और अर्थवादी भांड़ों विदूषकों के हाथों से मई दिवस का परचम छीन लेगा तथा अपनी विरासत अपने कब्जे में ले लेगा।

मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी एकता ही आज मई दिवस का सन्देश हो सकता है। इस एकता के बारे में लेनिन के इस उद्धरण पर गौर किया जाना चाहिए:

"मजदूरों को एकता की जरूरत अवश्य है और इस बात को समझना महत्वपूर्ण है कि उन्हें छोड़कर और कोई भी उन्हें यह एकता "प्रदान" नहीं कर सकता, कोई भी एकता प्राप्त करने में उनकी सहायता नहीं कर सकता। एकता स्थापित करने का "वचन" नहीं दिया जा सकता- यह झूठा दम्भ होगा, आत्मप्रवंचना होगी; एकता बुद्धिजीवी ग्रुपों के बीच "समझौतों" द्वारा "पैदा" नहीं की जा सकती। ऐसा सोचना गहन रूप से दुखद, भोलापन भरा और अज्ञानता भरा भ्रम है।"

"एकता को लड़कर जीतना होगा, और उसे स्वयं मज़दूर ही, वर्गचेतन मज़दूर ही अपने दृढ़, अथक परिश्रम द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।"

"इससे ज्यादा आसान दूसरी चीज़ नहीं हो सकती है कि "एकता" शब्द को गज-गज पर लम्बे अक्षरों में लिखा जाये, उसका वचन दिया जाये और अपने को "एकता" का पक्षधर घोषित किया जाये। परन्तु, वास्तव में एकता आगे बढ़े हुए मज़दूरों के परिश्रम तथा संगठन द्वारा ही आगे बढ़ायी जा सकती है।"

('त्रुदोवाया प्रावदा अंक-2, 30 मई, 1914)

मई दिवस का आज एकमात्र यही सन्देश हो सकता है कि वर्ग चेतन मज़दूरों को आगे बढ़कर, लड़कर, अपने परिश्रम से अपनी एकता हासिल करनी होगी और राजनीतिक संघर्षों के नये सिलसिले का सूत्रपात करना होगा। मज़दूर आन्दोलन को एक बार फिर क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना के एक नये युग में प्रवेश करना होगा और इक्कीसवीं सदी की नयी सर्वहारा क्रान्तियों की तैयारी में जुट जाना होगा।

विशेष सामग्री

(छब्बीसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय - 9

पार्टी की "तीन महान कार्यशैलियाँ"

एक क्रान्तिकारी पार्टी के बिना मजूदर वर्ग क्रान्ति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी क्रान्ति का रास्ता छोड़ संसदीय रास्ते पर चलने वाली नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रान्ति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सबसे ऊपर है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी 2001 के अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में छब्बीसवीं किस्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गई श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गई थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है। – सम्पादक

(पिछले अंक से आगे)

सिद्धान्त को व्यवहार के साथ जोड़ने की कार्यशैली

यहाँ जिस सिद्धान्त की बात की गई है वह सर्वहारा वर्ग का क्रान्तिकारी सिद्धान्त मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा है; और व्यवहार है हमारा ठोस क्रान्तिकारी व्यवहार–तीन महान क्रान्तिकारी आन्दोलनों यानी वर्ग संघर्ष, उत्पादन के लिए संघर्ष और वैज्ञानिक प्रयोग का व्यवहार। सिद्धान्त को व्यवहार के साथ जोड़ने का मतलब होता है मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा के रुख, दृष्टिकोण और पद्धति का प्रयोग करके हमारी क्रान्ति और (समाजवादी–अनु.) निर्माण की प्रक्रिया में सामने आने वाली व्यावहारिक समस्याओं का अध्ययन और समाधान करना। अध्यक्ष माओ इस जुमले का इस्तेमाल करते हैं : "तीर को निशाने पर मारना"। तीर का निशाने के साथ जो सम्बन्ध है, वही सिद्धान्त का व्यवहार के साथ है। अगर हमें सिद्धान्त के इस तीर को व्यवहार के निशाने पर अचूक तरीके से मारना है, तो हमें यह पद्धति अपनानी चाहिए: एक निश्चित उद्देश्य के लिए और तीन महान क्रान्तिकारी आन्दोलनों में उठी समस्याओं को हल करने के इरादे से मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त के अध्ययन के लिए व्यवहार को आरम्भ-बिन्दु बनाओ, और फिर इस सिद्धान्त की मदद से तय करो कि हमारा रुख, दृष्टिकोण और पद्धति क्या हो। अगर सिद्धान्त और व्यवहार एक-दूसरे से जुदा रहेंगे, तो हम इधर-उधर यूँ ही तीर चलाते रह जायेंगे। अगर एक सही सिद्धान्त का इस्तेमाल महज फालतू बतकही में लगे रहने के लिए करेंगे, इसे लपेटकर किनारे धर देंगे और इसके बारे में कुछ करेंगे नहीं, तो यह किसी काम का नहीं होगा, चाहे यह सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त ही क्यों न हो। अगर हम मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सैद्धान्तिक हथियार का इस्तेमाल करके क्रान्तिकारी व्यवहार के दौरान सामने आने वाली समस्याओं का निपटारा करेंगे, अगर हम इसकी मदद से उनका विश्लेषण, अध्ययन और समाधान करेंगे, सिर्फ तभी हम सिद्धान्त को व्यवहार के साथ जोड़ सकते हैं और तीर को निशाने पर मार सकते हैं।

अध्यक्ष माओ कहते हैं : **"मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को चीनी क्रान्ति के व्यवहार के साथ नजदीकी से जोड़ना वह विचारधारात्मक उसूल है जिस पर हमारी पार्टी ने लगातार अमल किया है।"** हमारी पार्टी का इतिहास मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सार्वभौम सत्य के चीनी क्रान्ति के ठोस व्यवहार के साथ उत्तरोत्तर बढ़ते एकीकरण का इतिहास है; यह दक्षिण और "वाम" अवसरवादी लाइनों के ऊपर अध्यक्ष माओ के नेतृत्व में पूरी पार्टी की जीत का इतिहास है। चीनी क्रान्ति के दीर्घकालिक संघर्ष का नेतृत्व करते हुए अध्यक्ष माओ ने हमेशा ही चीनी समाज की विशेषताओं और हर वर्ग की स्थिति की व्यापक जाँच-पड़ताल और गहराई से विश्लेषण किया। उन्होंने हमारे देश में जनवादी क्रान्ति के समय और समाजवादी क्रान्ति के समय उठी समस्याओं को सही ढंग से हल किया, हमारी पार्टी के लिए सही राजनीतिक दिशा, लाइन और उसूल तय किये और यह सुनिश्चित किया कि हमारे देश में क्रान्ति और निर्माण की राह में नई और पहले से भी बड़ी जीतें हासिल हों। पार्टी के ऐतिहासिक अनुभव ने यह दिखाया है कि सिद्धान्त को व्यवहार के साथ जोड़ करके और अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी लाइन के अनुसार आगे बढ़ते हुए पार्टी हमेशा विकसित हुई है और क्रान्तिकारी उद्देश्य हमेशा विजयी हुआ है। इसके विपरीत, जब भी हमने सिद्धान्त को व्यवहार से जुदा किया और अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी लाइन का रास्ता छोड़ा, तो पार्टी को धक्के लगे और क्रान्तिकारी लक्ष्य की राह में हारों का सामना करना पड़ा। इसलिए हम कह सकते हैं कि चीनी क्रान्ति की जीत मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त के चीनी क्रान्ति के व्यवहार के साथ एकीकरण की जबर्दस्त जीत है, अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी लाइन और माओ त्से-तुङ विचारधारा की जबर्दस्त जीत है।

सिद्धान्त को व्यवहार के साथ जोड़ना अध्ययन की सर्वहारा क्रान्तिकारी लाइन है जिसकी अध्यक्ष माओ ने हमेशा पैरोकारी की है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अध्ययन करने के प्रति दो परस्पर-विरोधी रवैये हैं। पहला है सिद्धान्त को व्यवहार से जोड़ने का मार्क्सवादी-लेनिनवादी रवैया। इस रवैये से हम मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त और पद्धति का इस्तेमाल परिवेश के विस्तृत अध्ययन और जाँच-पड़ताल के लिए और क्रान्तिकारी उत्साह तथा व्यावहारिकता को जोड़ने के लिए करते हैं। इस रवैये से, हम तीर को निशाने पर मार सकते हैं। दूसरा रवैया सिद्धान्त को व्यवहार से जुदा करने का मनोगतवादी रवैया है। यह अध्ययन की खराब शैली है, मार्क्सवाद-लेनिनवाद विरोधी शैली है–अवसरवादियों और संशोधनवादियों की शैली है। हम जानते हैं कि अध्ययन की शैली का प्रश्न सोचने की शैली का प्रश्न है, जिसका सरोकार सभी नेतृत्वकारी निकायों, सभी कार्यकर्ताओं और पार्टी के सभी सदस्यों से है; यह प्रश्न मार्क्सवाद-लेनिनवाद के प्रति हमारे रवैये से और सभी पार्टी कामरेडों के काम के प्रति उनके रवैये से जुड़ा हुआ है। यही वजह है कि अध्ययन शैली का प्रश्न हमेशा ही दो लाइनों के संघर्ष से नजदीकी से जुड़ा रहा है। दो अध्ययन शैलियों का विरोध और संघर्ष अध्ययन की समस्या पर दो लाइनों के संघर्ष का प्रतिबिम्बन है। अध्ययन शैली के प्रश्न को पार्टी भावना के प्रश्न के स्तर तक उठाकर अध्यक्ष माओ ने मनोगतवादी कार्यशैली के सार को गहराई से उजागर किया है जो सिद्धान्त को व्यवहार से जुदा करता है: **"इस शैली से अपना आचरण तय करना खुद को नुकसान पहुँचाना है, इसे औरों को सिखाना औरों को नुकसान पहुँचाना है, और इसे क्रान्ति को निर्देशित करने के लिए इस्तेमाल करना क्रान्ति को नुकसान पहुँचाना है।" "यह इस बात की अभिव्यक्ति है...कि पार्टी भावना या तो नदारद है या कमजोर है।"**

ल्यू शाओ ची, लिन प्याओ और उनकी तरह के दूसरे धोखेबाज तथा विभिन्न अवसरवादी लाइनों के सरगनाओं की विचारधारात्मक विशेषता यह थी कि वे मनोगत को वस्तुगत से और सिद्धान्त को व्यवहार से अलग करते थे। वे सिद्धान्त को व्यवहार से जोड़ने के उसूल का हमेशा जी-जान से विरोध करते थे, हमेशा मार्क्सवाद- लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा के खिलाफ लड़ते थे, और इसके बजाय आदर्शवादी प्रागनुभववाद को बढ़ावा देते थे। संशोधनवाद पर अमल करने के लिए उन्हें पहले मार्क्सवाद-लेनिनवाद के आधारभूत उसूलों का विरोध करना ही था। लिन प्याओ कहता था कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्लासिकी कृतियाँ महज "अतीत" की चीजों के बारे में हैं, वे "हमसे बहुत दूर" हैं, अभी ही "पुरानी पड़ चुकी" हैं, और उनका अध्ययन करना जरूरी नहीं है। यह घोर प्रतिक्रियावादी लाइन पेश करके वह मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बुनियादी उसूलों को खारिज करना चाहता था ताकि वह अपना संशोधनवादी कचरा फैला सके और पूँजीवादी पुनर्स्थापना की अपनी क्रान्ति-विरोधी साजिश को अंजाम दे सके। इसके साथ ही लिन प्याओ क्रान्तिकारी व्यवहार का पूरी ताकत से विरोध करता था, "जीनियस" के प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त की वकालत करता था और इस बात को नकारता था कि ज्ञान का आधारभूत स्रोत व्यवहार है। उसने कहा कि हमें "मनोगत से वस्तुगत की ओर", "विचार से यथार्थ की ओर" बढ़ना चाहिए, और सिद्धान्त एवं व्यवहार तथा मनोगत एवं वस्तुगत के बीच के सम्बन्ध को एकदम उलट डाला। इसलिए, लिन प्याओ की क्रान्ति-विरोधी संशोधनवादी लाइन की आलोचना करते हुए हमें उसके द्वारा प्रचारित खराब, मार्क्सवाद-लेनिनवाद विरोधी अध्ययन शैली की कठोर आलोचना करनी चाहिए और उसे खत्म कर देना चाहिए।

सिद्धान्त और व्यवहार को एक करने के उसूल को थामे रहने के लिए हमें तथ्यों से सत्य को निकालने का वैज्ञानिक रवैया अपनाना चाहिए। "तथ्य" वे सभी चीजें हैं जिनका वस्तुगत अस्तित्व है; "सत्य" का अभिप्राय इन चीजों के आन्तरिक सम्बन्धों से है और "निकालने" का अर्थ उनका अध्ययन करना है। रोजमर्रा के काम में, तथ्यों से सत्य को निकालने का वैज्ञानिक रवैया अपनाने के लिए जरूरी है कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद- माओ त्से-तुङ विचारधारा के मार्गदर्शन में वस्तुगत चीजों के विकास को नियंत्रित करने वाले नियमों का अध्ययन किया जाये; इसका अर्थ होता है कि पार्टी की राजनीतिक लाइन, दिशा और उसूलों तथा ऊपरी स्तर से मिले निर्देशों को अपने इलाके या इकाई की वास्तविक स्थिति पर लागू किया जाये; इसका यह भी मतलब होता है कि इन पर चर्चा करके उन्हें ढंग से लागू किया जाये, मनोगत का वस्तुगत के साथ मेल कराने के लिए प्रयास किये जायें और सिद्धान्त एवं व्यवहार को इस तरह जोड़ा जाये ताकि हम अपने कामों में तीर निशाने पर मार सकें, और वाँछित नतीजे हासिल कर सकें।

सिद्धान्त और व्यवहार को जोड़ने के उसूल को थामे रखने के लिए हमें सामाजिक स्थिति का अध्ययन और जाँच-पड़ताल करनी चाहिए। अध्ययन और जाँच-पड़ताल मार्क्सवाद-लेनिनवाद की वैज्ञानिक पद्धति है; जब हम ऐसे कार्यभार की शुरुआत करते हैं, तो हमें वास्तविक स्थिति की गहरी और तफसील के साथ जाँच-पड़ताल करनी चाहिए, और फिर जुटाई गयी सामग्री का विश्लेषण करना चाहिए। इस प्रक्रिया में हमें **"कूड़ा-करकट को फेंककर जरूरी को चुनना चाहिए, फर्जी को खत्म कर सच्चे को बनाये रखना चाहिए, और एक से दूसरे की ओर तथा बाहर से भीतर की ओर बढ़ना चाहिए...ताकि बोधात्मक ज्ञान से तार्किक ज्ञान की ओर बढ़ा जा सके"**; हमें महत्वपूर्ण और गौण में फर्क करना, किसी परिघटना के सार को पकड़ना और सच तथा झूठ में फर्क करना आना चाहिए, तभी हम ऐसे नतीजे निकाल सकेंगे जो यथार्थ से सबसे अधिक मेल खाते हैं और यथार्थ पर टिके अपने काम को आगे बढ़ा सकेंगे।

(अगले अंक में "जनसमुदाय के साथ निकट सम्बन्ध बनाये रखने की कार्यशैली")

मज़दूरों की व्यापक जुझारू एकजुटता की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल

(बिगुल संवाददाता)

आसनसोल (पं. बंगाल)। दुर्गापुर-आसनसोल-धनबाद औद्योगिक अंचल के कुछ अगुआ मज़दूर साथियों ने विभिन्न उद्योगों, कारखानों या यूनियनों में बंटे हुए मज़दूरों की जुझारू एकजुटता बहाल करने के उद्देश्य से पिछले दिनों एक महत्वपूर्ण पहल ली, जिसके नतीजे के तौर पर विगत 9 मार्च को आसनसोल में एक मज़दूर कन्वेंशन आयोजित किया गया। कन्वेंशन में बनी आम सहमति के आधार पर एक कोआर्डिनेशन कमेटी की स्थापना का निर्णय लिया गया। जिसमें 41 मज़दूर साथी शामिल हुए। पुन: 23 मार्च को इस कमेटी की एक मीटिंग हुई जिसमें सर्वसम्मति से तय किया गया कि कमेटी का नाम 'संग्रामी श्रमिक-कर्मचारी समन्वय समिति, होगा। यह फैसला लिया गया कि समिति दूसरी जगहों के मजदूरों-कर्मचारियों की संग्रामी जमातों के साथ सम्पर्क स्थापित करेगी।

9 मार्च के कन्वेंशन की तैयारी के लिए दुर्गापुर-आसनसोल-धनबाद अंचल के रेल, इस्पात, कोयला, इंजीनियरिंग, सीमेण्ट, बैंक, बीमा, टेलीकॉम, डाक व ऊर्जा क्षेत्र के साथ-साथ असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के बीच कई बैठकें की गईं और व्यक्तिगत सम्पर्क भी किये गये। एक महीने से भी अधिक समय तक चले इस अभियान के अनुभवों के निचोड़ को कन्वेंशन में प्रस्तुत एक छोटे से आलेख में इस रूप में प्रस्तुत किया गया:-

"वर्तमान मज़दूर आन्दोलन के सामने बड़ी समस्या है संग्रामी शक्तियों के बीच का अलगाव और विच्छिन्नता। इस स्थिति में संग्रामी मज़दूरों को केवल यूनियन संगठन से ही जुड़े रहने से काम नहीं चलेगा, बल्कि कारखाना की लड़ाई के साथ-साथ प्रतिरोध संग्राम खड़ा करने के लक्ष्य हेतु अपना दायित्व निभाना होगा। हमारा तत्कालिक लक्ष्य होना चाहिए- कारखाना, ऑफिस या कोई यूनियन हो, सभी संग्रामी हिस्सों के बीच समन्वय स्थापित करना। संगठित रूप से यह काम शुरू करने के लिए एक कमेटी तैयार करना जरूरी है, जिसकी सदस्यता का मानदण्ड होगा: (क) पेशागत रूप से मज़दूर-कर्मचारी, (ख) मज़दूर वर्ग के एकजुट प्रतिरोध के अलावा दूसरे रास्ते से चलने का विरोध करेंगे; (ग) मज़दूर वर्ग की एकजुट ताकत को दूसरी शक्तियों के अधीन करने की कोशिशों का विरोध करना।"

9 मार्च के मज़दूर कन्वेंशन में विभिन्न उद्योगों के लगभग सौ मजदूर प्रतिनिधियों के अतिरिक्त 'मज़दूर' और 'श्रमिक शक्ति' पत्रिकाओं के पर्यवेक्षक प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। अपने प्रारम्भिक वक्तव्य में कन्वेंशन के के लिए पहलकदमी लेने वाले एक अग्रणी मज़दूर साथी समर मुखर्जी (पूर्व रेलवे) ने कहा कि मज़दूर वर्ग पर सत्ता और पूंजी की चौतरफा मार की कोई स्वत: स्फूर्त प्रतिक्रिया भले ही न दीख रही हो, लेकिन इसके खिलाफ एक धारा लगातार प्रवाहित हो रही है। मजदूरों में एकता की आकांक्षा प्रबल है। मुख्य प्रश्न यह है कि बड़े यूनियनों के केन्द्रीय नेतृत्व से अलग, लेकिन आम मज़दूरों के हितों के प्रति निष्ठावान संग्रामी मज़दूर नेतृत्व की भूमिका किस तरह निभायेंगे! उनहोंने कन्वेंशन से आह्वान किया कि वह इस समस्या को हल करने की दिशा में एक भ्रूण के निर्माण का काम करें। कोयला उद्योग के वरिष्ठ मज़दूर साथी रवि नन्दी ने कहा कि अनुकूल स्थितियों व संभावनाओं के बावजूद मज़दूर आन्दोलन आज कारखाना स्तर पर जकड़न में पड़ा हुआ है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया द्वारा पूरे समाज के ध्वंस को रोकने के साथ मज़दूरों का प्रतिरोध संग्राम जुड़ा हुआ है। लेकिन विभिन्न उद्योगों तथा संगठनों के ढांचे में ही संग्रामी मज़दूरों की सक्रियता एवं पहल सीमाबद्ध होकर रह गयी हैं। इसे तोड़ना होगा।

अध्यक्ष मण्डल के सदस्यों के वक्तव्य के बाद विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों से आये मज़दूरों ने मुख्यत: दो विषयों- अपने क्रियाकलापों तथा संग्रामी मज़दूरों के बीच समन्वय पर ज़ोर दिया। विचार-विमर्श में मुख्यत: झरिया इलाके के कोयला मज़दूर रामाशीष सिंह, दामोदर वैली कारपोरेशन के कर्मचारी ए.एन.झा, कोयला मज़दूर रामसेवक हरिजन, रेल मज़दूर उपेन्द्र रावत, बाउरिया कॉटन मिल के मज़दूर प्रफुल्ल भुंइया, कोयला उद्योग के इन्द्रजीत मुखर्जी, असंगठित उद्योग के मज़दूर माधव बोस, रेल मज़दूर सुमित अधिकारी, रुपम सेन, सुदीप्त आचार्य, प्रभुनाथ रविदास, अशोक आदि ने हिस्सा लिया।

शीलचन्द का मज़दूर आन्दोलन एक समझौते में समाप्त
ज्यादातर मज़दूरों को हिसाब देकर छुट्टी

(बिगुल संवाददाता)

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। शीलचन्द एग्रो आयल्स प्रा.लि., लालपुर, ऊधमसिंहनगर का पांच माह पुराना मज़दूर आन्दोलन अन्तत: एक अलिखित समझौते के बाद समाप्त हो गया।

इस समझौते के तहत प्रबन्धन में महज 25 मजदूरों को काम पर वापस लेना स्वीकार किया और शेष मजदूरों को उनके पुराना बकाया भुगतान के साथ पीएफ सुविधा प्राप्त मज़दूरों को पांच माह और अन्य मजदूरों (जिनकी संख्या अधिक है) को महज तीन माह का अतिरिक्त वेतन प्राप्त हुआ। प्रबन्धन ने जिन्हें काम पर लेने की सूची लगाई उनसे भी ज्यादातर मज़दूरों ने हिसाब ले लिया।

प्रबन्धन ने यह समझौता भी उस वक्त किया, जब 6 मई को इस वक्त बाहर से आकर कारखाने में काम करने वाले मज़दूरों द्वारा, मालिक की शह पर एक हड़ताली मज़दूर रईस की पिटाई कर दी और जिससे उत्तेजित स्थानीय लालपुर गांव के लगभग डेढ़ सौ लोगों ने फैक्ट्री को घेर लिया और जमकर पथराव किया। स्थिति को निर्यंत्रित करने के लिए फैक्ट्री एरिया में भारी पुलिस बल के साथ पी.ए.सी. लगा दी गई। प्रशासन भी भारी दबाव में था। लेकिन लम्बे संघर्ष से थक चुके तमाम मज़दूरों का और नेतृत्व के एक हिस्से का समझौता किसी भी रूप में कर लेने का एक दबाव काम कर रहा था। इस लम्बी अवधि में नेतृत्व के भीतर आपसी अन्तरविरोध तीखे हो गये थे, वे बुर्जुआ नेताओं के पीछे भागने लगे थे। स्थिति यह थी कि ज्यादातर मज़दूर अब और लड़ाई झेलने की स्थिति में नहीं थे। शीलचन्द के मज़दूर बेवजह निष्कासित दो श्रमिकों की बहाली रुके वेतन का भुगतान और फैक्ट्री में श्रम कानून लागू करने की मांग के साथ विगत 1 दिसम्बर, 2002 से आंन्दोलनरत थे। हालांकि बगैर यूनियन व बिना पूर्व अनुभव के यहां के मज़दूरों ने एक बेहतर लड़ाई को अंजाम दिया लेकिन आन्दोलन की निरन्तरता बना नहीं पाये। वैसे भी एक छोटे कारखाने के संघर्ष की एक सीमा होती है। क्षेत्र के क्रान्तिकारी संगठनों व कुछ यूनियनों का भी सहयोग इस आन्दोलन को बराबर मिलता रहा, लेकिन यह आन्दोलन भी कारखाना केन्द्रित आन्दोलन बनकर रह गया।

(पेज 5 से आगे)

अल्बर्ट पार्सन्स और शिकागो के शहीद मजदूर...

और हैट को माथे पर नीचे खींच लिया। उसने हाथ जेबों में ठूंस लिये और शरीर का बोझ कभी एक ठिठुरे हुए पैर तो कभी दूसरे पर डालता हुआ इन्तजार करने लगा।

जुलूस दिखायी पड़ा। यह वैसा नहीं था जिसकी उम्मीद थी। वैसा तो कत्तई नहीं था जैसी उम्मीद करके शहर के अधिकारियों ने इजाजत दी थी। कोई संगीत नहीं था, सिवाय हल्के पदचापों और औरतों की धीमी सिसकियों के और बाकी सारी आवाजें, सारे शोर जैसे इनमें डूब गये थे। जैसे सारे शहर को खामोशी के एक विशाल और शोकपूर्ण कफन ने ढंक लिया हो।

पहले झण्डा लिये हुए एक आदमी आया, जुलूस का एकमात्र झण्डा, एक पुराना रंग उड़ा हुआ सितारों और पट्टियों वाला झण्डा जो गृहयुद्ध के दौरान गर्व के साथ एक रेजीमेण्ट के आगे चलता था। उसे लेकर चलने वाला गृहयुद्ध में लड़ा एक सिपाही था, एक अधेड़ उम्र का आदमी जिसका चेहरा जैसे पत्थर का हो।

फिर आयीं गाड़ियां जिनमें ताबूत रखे हुए थे। फिर पुरानी, खुली हुई घोड़ागाड़ियां जिनमें परिवारों के लोग थे। उनमें से एक में आल्टगेल्ड ने लूसी पार्सन्स को देखा, वह अपने दोनों बच्चों के साथ बैठी थी और निगाहें सीधी सामने टिकी हुई थीं।

फिर आये मरने वालों के अभिन्न दोस्त, उनके कामरेड। वे चार-चार की कतार में चल रहे थे, उनके चेहरे भी उदास थे, जैसे गृहयुद्ध के सिपाही का चेहरा था।

फिर अच्छे कपड़ों में पुरुषों और स्त्रियों का एक समूह आया। उनमें से कइयों को आल्टगेल्ड जानता और पहचानता था-वकील, जज, डाक्टर, शिक्षक, छोटे व्यापारी और बहुत से दूसरे जो इन पांचों मरने वालों को बचाने की लड़ाई में शामिल थे।

फिर आये मजदूर जिनकी कोई सीमा ही नहीं थी। वे आये थे पैकिंग करने वाली कम्पनियों से, लकड़ी के कारखानों से, मैकार्मिक और पुलमैन कारखानों से। वे आये थे मिलों से, खाद की खत्तियों से, रेलवे यार्डों से और कनस्तर गोदामों से। वे आये थे उन सरायों से जिनमें बेरोजगार रहते थे, सड़कों से, गेहूं के खेतों से, शिकागो और एक दर्जन दूसरे शहरों की गलियों से। बहुत से अपने सबसे अच्छे कपड़े पहने हुए थे, अपना एकमात्र काला सूट जिसे पहनकर उनकी शादी हुई थी। बहुतों के साथ उनकी पत्नियां भी थीं, बच्चे भी उनके साथ चल रहे थे। कुछ ने बच्चों को गोद में उठा रखा था। लेकिन बहुतेरे ऐसे भी थे जिनके पास काम के कपड़ों के सिवा कोई कपड़े नहीं थे। वे अपने ओवरआल और नीली जींस और फलालैन की कमीजें पहने हुए थे। चरवाहे भी थे जो पांच सौ मील से अपने घोड़ों पर आये थे, यह सोचकर कि शिकागो में जहां लोगों में विश्वास है और इच्छाशक्ति है, यह चीज रोकी जा सकती है। और जब यह नहीं रोकी जा सकी तो वे अर्थी के साथ चलने के लिए रुक गये थे। वे अपने बेढंगे ऊंची एड़ियों वाले जूते पहने चल रहे थे। उनमें शहर के आसपास के देहातों के लाल चेहरों वाले किसान थे, इंजन ड्राइवर थे और विशाल झीलों से आये नाविक थे। सैकड़ों पुलिसवाले और पिंकरटन के आदमी सड़क के दोनों ओर खड़े थे। लेकिन जब उन्होंने इसे देखा तो वे चुपचाप खड़े हो गये, बंदूकें रख दीं और निगाहें जमीन पर टिका लीं।

क्योंकि मजदूर शान्त थे। सुनायी पड़ती थी उनकी सांसें और चलते हुए कदमों की आवाज। एक भी शब्द नहीं सुनायी देता था। कोई बोल नहीं रहा था। न मर्द, न औरतें, बच्चे तक नहीं। सड़क के किनारे खड़े लोग भी खामोश थे।

और अभी भी मजदूर आते ही जा रहे थे। आल्टगेल्ड एक घण्टे तक खड़ा रहा, पर वे आते ही रहे। कंधे से कंधा मिलाये, चेहरे पत्थर जैसे, आंखों से धीरे-धीरे आंसू बह रहे थे जिन्हें कोई पोंछ नहीं रहा था। एक और घण्टा बीता, फिर भी उनका अन्त नहीं था। कितने हजार जा चुके थे, कितने हजार और आने बाकी थे, वह अन्दाज नहीं लगा सकता था। पर एक चीज वह जानता था, इस देश के इतिहास में ऐसी कोई अंत्येष्टि पहले कभी नहीं हुई थी, सबसे ज्यादा प्यारा नेता एबे (अब्राहम) लिंकन जब मरा था, तब भी नहीं। ●

(शिकागो पुलिस के मुताबिक शहीद मजदूर नेताओं के मातमी जुलूस में 6 लाख से ज्यादा लोग शामिल हुए थे। –अनु.)

अनुवाद : सत्यम

रपट: मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को आगे बढ़ाओ!

(बिगुल संवाददाता)

ऊधमसिंह नगर। यहां मई दिवस पर 'बिगुल मज़दूर दस्ता' ने 'मई दिवस को अनुष्ठान मत बनाओ! सच्चे संघर्ष के लिए संकल्प बांधो, आगे आओ!!' शीर्षक पर्चे का सघन रूप से वितरण किया और मई दिवस पर विभिन्न आयोजनों में भागीदारी की।

रुद्रपुर, किच्छा, पंतनगर, खटीमा, लालकुआं, हल्द्वानी आदि जगहों पर फैक्ट्री गेटों, कार्यालयों, मज़दूर बस्तियों, मुहल्लों और फार्मों में बांटे गये पर्चे में लिखा है कि "जैसे जैसे मई दिवस की महत्ता बढ़ती जा रही है, इसे सालाना कर्मकाण्ड के रूप में बदलने की साजिशें भी बढ़ती जा रही हैं। एक ऐसे वक्त में जब पूरी दुनिया के पैमाने पर मेहनतकशवर्ग के लुटेरे खतरनाक ढंग से एकजुट होकर मेहनतकशों पर वहशी भेड़ियों की तरह टूट पड़े हों, जब लम्बे संघर्षों के दौरान मिले श्रम कानून व जनवादी अधिकारों को छीना जा रहा हो, जब एक बार फिर आठ घण्टे काम के अधिकार को 12-18 घण्टे में बदला जा रहा हो, जब हर न्यायपूर्ण संघर्ष को काले कानूनों और दमन के पाटों से कुचला जा रहा हो, तब ये बेजान कवायदें मज़दूर आन्दोलन की पीठ में छुरा भोंकने के अलावा कुछ नहीं कर सकतीं।"

देश और स्थानीय हालात की चर्चा करते हुए पर्चे के माध्यम से कहा गया है कि "पिछले तेरह वर्षों से देश के हुक्मरानों ने उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों से मेहनतकश वर्ग के ऊपर जो हमला बोला है उसने मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी हरावलों के सामने नई-नई चुनौतियां पेश कर दी हैं। इनमें से एक अहम चुनौती है मई दिवस की क्रान्तिकारी स्पिरिट को ताजा करना और उसके क्रान्तिकारी परम्परा को फिर से जीवित करना। आज 'काम के घण्टे आठ करो' का नारा देश के मज़दूर आन्दोलन के लिए एक नया अर्थ ग्रहण कर चुका है। मज़दूर आन्दोलन आज जिस अंधेरी गुफा में पहुंच गया है वहां से बाहर निकलने की बुनियादी शर्त है कि मई दिवस की धुआंती मशाल को प्रज्जवलित किया जाये।'

क्षेत्र में विभिन्न जगहों पर मई दिवस पर विविध आयोजन हुए। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' की टोली ने रुद्रपुर, पंतनगर व खटीमा के आयोजनों में भागीदारी की। रुद्रपुर में विभिन्न यूनियनों-संगठनों ने सरकारी अस्पताल में जुलूस निकाला और भगत सिंह चौक पर सभा की। यहां पांच माह से संघर्षरत 'शील चन्द' के मज़दूरों की उपेक्षा करने वाले मुख्यमंत्री का पुतला फूंका गया। पंतनगर सेण्टर पर विभिन्न संगठनों ने आमसभा की, जबकि खटीमा में संजय पार्क में सभा का आयोजन हुआ। सभी जगहों पर उदारीकरण के दौर में जारी मज़दूर विरोधी नीतियों व श्रम कानूनों में घातक फेरबदल की मुखालफत की गई और नये संघर्ष के लिए मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को आगे बढ़ाने का आह्वान किया गया।

नया संकल्प लो! नये लश्कर सजाओ! जागो फिर एक बार!

नोएडा (गौतमबुद्ध नगर)।

हर शहर से एक शिकागो
उठ खड़ा हो
सोचकर आगे बढ़ें हम फिर
मई दिवस बन जाये हर दिन साल का
यह सोचकर तैयारियां करने लगें
हम फिर।

राजधानी दिल्ली की सीमा से सटी इस औद्योगिक नगरी में भी बिगुल मजदूर दस्ता ने मई दिवस पर कोई उबाऊ अनुष्ठान करने की बजाय मई दिवस की सच्ची क्रान्तिकारी विरासत से मजदूरों को परिचित कराने और नया जागरण पैदा करने के लिए कार्यक्रम लिए। पहली मई को सेक्टर-5, 8, 9 व 10 की झुग्गियों में प्रभात फेरियां आयोजित की गयीं और 'जागो फिर एक बार' शीर्षक पर्चे का व्यापक वितरण किया गया। झुग्गियों में जगह-जगह नुक्कड़ सभाएं की गयीं। मजदूरों के अन्य रिहाइशी इलाकों से कारखाना क्षेत्रों की ओर जाने वाली सड़कों चौराहों पर भी खड़े होकर व्यापक पर्चा वितरण किया। बिगुल मज़दूर दस्ता की टोली ने सेक्टर-8 स्थित कण्ट्रोल एण्ड स्विचगियर कम्पनी के मजदूरों द्वारा आयोजित मई दिवस कार्यक्रम में भी शिरकत की। झुग्गियों में नुक्कड़ सभाओं और पर्चा वितरण का कार्यक्रम अगले दिन भी चलता रहा।

लगभग दो दर्जन नुक्कड़ सभाओं को संबोधित करते हुए बिगुल मजदूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने मई दिवस के शहीदों के सपनों की याद दिलाते हुए मजदूरों से पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के खिलाफ फैसलाकुन जंग के लिए उठ खड़े होने का आह्वान किया। उन्होंने दलाल ट्रेड यूनियनों और धन्धेबाज नेताओं की गद्दारियों के कारण पैदा हुई हताशा-निराशा से उबरकर नये सिरे से संगठित होने और संघर्षों के नये सिलसिले की शुरुआत का आह्वान किया।

मजदूरों के बीच 'जागो फिर एक बार' शीर्षक पर्चे में लिखा गया है कि "देश के मजदूर वर्ग की इस हताशा और बेबसी के लिए मुख्य रूप से मजदूर आन्दोलन के नेतृत्व पर कब्जा जमाये तमाम धन्धेबाज ट्रेड यूनियन नेता जिम्मेदार हैं जिन्होंने मजदूर वर्ग को महज दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाइयों में उलझाकर उसकी ताकत को खोखला बनाकर रख दिया है। नतीजा यह है कि मजदूर वर्ग मजदूर क्रान्ति और समाजवाद के सपनों तक को भुला बैठा है। पूंजीवादी पार्टियों की गन्दी चुनावी राजनीति की खिदमत करने वाली इन तमाम दलाल ट्रेड यूनियनों ने मई दिवस को भी सालाना कर्मकाण्ड में बदलकर रख दिया है। मई दिवस के शहीदों के खून को इन्होंने गन्दा कर दिया है। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के महान नारे को भी इन्होंने नापाक कर दिया है। मजदूर वर्ग की रहनुमाई का दम भरने वाली नकली कम्युनिस्ट पार्टियां भी इसी जमात में शामिल हैं इन्होंने मजदूरों के खून से सने लाल झण्डे की शान को भी धूल में मिला दिया है। मजदूर वर्ग के इन तमाम फर्जी हिमायतियों की गद्दारियों और काली करतूतों का ही नतीजा है कि आज मजदूर वर्ग पूंजीपति वर्ग के हमलों के सामने निहत्था और बेबस महसूस कर रहा है और हताशा-निराशा के अन्धे कुएं में गिर पड़ा है।" मजदूरों से नये सिरे से उठ खड़े होने का आह्वान करते हुए पर्चे में लिखा है कि "जिस तरह जिन्दगी कभी खत्म नहीं हो सकती, उसी तरह उमीदें भी कभी खत्म नहीं होती। लम्बी से लम्बी रात भी खत्म होती ही है। इसलिए, हताशा और नाउम्मीदी के अंधेरे से बाहर आओ। पूंजीवाद अजर-अमर नहीं है।

जिस तरह मजदूर वर्ग ने पिछली सदी में पूंजी के किलों पर धावा बोला था उसी तरह इस नयी सदी में भी हमें एक बार फिर से उठ खड़े होना होगा। नये सिरे से अपनी बिखरी फौजों को एकजुट करना होगा। नये सिरे से अपनी ताकत बटोरनी होगी। दूसरा कोई रास्ता नहीं है। रोज-रोज मरने से बेहतर है हर तरह के जोरो जुल्म, भेदभाव से आजाद एक नयी दुनिया के बनाने के लिए नये सिरे से संघर्षों में शामिल होना।

पिछली सदी में हमने पूंजी के कुछ बुर्जों को ध्वस्त किया था। अबकी बार हमें पूंजी के तमाम किलों पर फैसलाकुन चोट करनी होगी। पूंजीवाद-साम्राज्यवाद की कब्र इस बार इतनी गहरी खोदनी होगी कि वह फिर से उठकर पलटवार करने ही न पाये।'

'बक़लमे-खुद'

स्तम्भ के बारे में

-सम्पादक मण्डल

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम ज़िन्दगी की जद्दोजहद में जूझ रहे मज़दूरों और उनके बीच रहकर काम करने वाले मज़दूर संगठनकर्ताओं-कार्यकर्ताओं की साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित करते हैं – कविताएं, कहानियां, डायरी के पन्ने, गद्यगीत आदि-आदि।

इस स्तम्भ की शुरुआत की एक कहानी है। 'बिगुल' के सभी प्रतिनिधियों-संवाददाताओं के अनुभव से यह जुड़ी हुई है। हमने पाया कि जो कुछ पढ़े-लिखे और उन्नत चेतना के मज़दूर हैं, वे गोर्की की 'मां', उनकी आत्मकथात्मक उपन्यास-त्रयी और अन्य रचनाओं को तो बेहद दिलचस्पी के साथ पढ़ते हैं, प्रेमचन्द उन्हें बेहद पसन्द आते हैं, आस्त्रोव्स्की की 'अग्निदीक्षा' और पोलेवेई की 'असली इंसान' ही नहीं, कुछ तो बाल्ज़ाक और चेर्निशेव्स्की को भी मगन होकर पढ़ते हैं। लेकिन जब हम हिन्दी के आज के सिरमौर वामपंथी कथाकारों की बहुचर्चित रचनाएं उन्हें पढ़ने को देते हैं तो वे बेमन से दो-चार पेज पलटकर धर देते हैं। पढ़कर सुनाते हैं तो उबासी या झपकी लेने लगते हैं। यदि उन सबकी राय को समेटकर थोड़े में कहा जाये, तो इसका कारण यह है कि ज्यादातर वामपंथी-प्रगतिशील लेखक आज अपनी रचनाओं में आम आदमी की ज़िन्दगी की, संघर्ष और आशा-निराशा की जो तस्वीर उपस्थित कर रहे हैं, वह आज की ज़िन्दगी की सच्चाइयों से कोसों दूर है। वह या तो ट्रेनों-बसों की खिड़कियों से देखे गये गांवों और मज़दूर बस्तियों का चित्र है, या फिर अतीत की स्मृतियों के आधार पर रची गयी काल्पनिक तस्वीर। नयेपन के नाम पर जो कला का इन्द्रजाल रचा जा रहा है, वह भी आम जनता के लिए बेगाना है। कारण स्पष्ट है। दरअसल इन तथाकथित वामपंथियों का बड़ा हिस्सा "वामपंथी कुलीनों" का है। ये "कलाजगत के शरीफजादे" हैं जो प्राय: प्रोफेसर, अफसर या खाते-पीते मध्यवर्ग के ऐसे लोग हैं जो जनता की जिन्दगी को जानने-समझने के लिए हफ्ते-दस दिन की छुट्टियां भी उसके बीच जाकर बिताने का साहस नहीं रखते। ये अपने नेहनीड़ों के स्वामी सद्गृहस्थ लोग हैं। ये गरुड़ का स्वांग भरने वाली आंगन की मुर्गियां हैं। ये फर्जी वसीयतनामा पेश करके गोर्की, लू शुन, प्रेमचन्द का वारिस होने का दम भरने वाले लोग हैं। समय आ रहा है जब क्रान्तिकारी लेखकों-कलाकारों की एकदम नई पीढ़ी जनता की ज़िन्दगी और संघर्षों के ट्रेनिंग-सेण्टरों से प्रशिक्षित होकर सामने आयेगी। इन कतारों में आम मज़दूर भी होंगे। भारत का मज़दूर वर्ग आज स्वयं अपना बुद्धिजीवी पैदा करने की स्थिति में आ चुका है। भारत का यह नया बुद्धिजीवी मज़दूर या मज़दूर बुद्धिजीवी सर्वहारा क्रान्ति की अगली-पिछली पांतों को नई मजबूती देगा। आज परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम अपेक्षा करें कि भारतीय मज़दूर वर्ग भी अपना इवान बाबुश्किन और मक्सिम गोर्की पैदा करेगा। 'बिगुल' की कोशिश होगी कि वह ऐसे नये मज़दूर लेखकों का मंच बने और प्रशिक्षणशाला भी।

इसी दिशा में, पहलकदमी जगाने वाली एक शुरुआती कोशिश के तौर पर इस स्तम्भ की शुरुआत की गयी है। मुमकिन है कि मज़दूरों और मज़दूरों के बीच काम करने वाले संगठनकर्ताओं की इन रचनाओं में कलात्मक अनगढ़ता और बचकानापन हो, पर इनमें जीवित यथार्थ की ताप और रोशनी के बारे में आश्वस्त हुआ जा सकता है। ज़िन्दगी की ये तस्वीरें सच्ची वामपंथी कहानी का कच्चा माल भी हो सकती हैं। और फिर यह भी एक सच है कि हर नयी शुरुआत अनगढ़-बचकानी ही होती है। लेकिन मंजे-मंजाये घिसे-पिटे लेखन से या काल्पनिक जीवन-चित्रण के उच्च कलात्मक रूप से भी ऐसा अनगढ़ लेखन बेहतर होता है जिसमें जीवन की वास्तविकता और ताजगी हो। हमारा यह अनुरोध है कि मज़दूर साथी अपनी ज़िन्दगी की क्रूर-नंगी सच्चाइयों की तस्वीर पेश करने के लिए अब खुद कलम उठायें और ऐसी रचनाएं इस स्तम्भ के लिए भेजें। ***साथ ही प्रकाशित रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया भी भेजें।***

इस अंक में हम एक मज़दूर कार्यकर्ता ***जयप्रताप*** *की कहानी छाप रहे हैं।*

शब्दचित्र

एक मुलाक़ात

• जयप्रताप

सुबह का वक्त है। हवा में अभी ठंडक है। खाते-पीते घरों के लोग सुबह की सैर पर निकले हैं। कुत्तों की जंजीर पकड़कर उन्हें घुमाते लोग ऐसे लग रहे हैं, जैसे वे लोग नहीं बल्कि कुत्ते उन लोगों को घुमा रहे हैं। बढ़ती तोंद को काबू में रखने के लिए कुछ लोग पार्कों का चक्कर लगा रहे हैं। सड़क पर चहल-पहल होने लगी है। नोएडा शहर जाग चुका है। पुरुष व महिला मजदूरों के कई झुंड कारखानों की तरफ ऐसे भागे चले जा रहे हैं, जैसे कोई अप्रत्याशित घटना घट गई हो। मुझे और मेरे एक साथी को भी आज फिर नोएडा के कारखाना गेटों के चक्कर लगाने हैं, कहीं कोई काम मिल जाए। बस स्टॉप पर खड़ी मजदूर औरतें हाथ में टिफिन लिये बस का इन्तजार कर रही हैं। कुछ मजदूर औरतें तो लगभग दौड़ते हुए चलती बसों में चढ़ जा रही हैं।

एक तरफ, बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएं खड़ी हैं, जिनके लॉन में किस्म-किस्म के खूबसूरत फूल खिले हैं, दरवाजे पर मोटे-तगड़े कुत्ते बंधे हैं, कहीं-कहीं तो रोबीली मूंछो वाला चौकीदार भी है। सामने लाखों की देशी-विदेशी गाड़ियां खड़ी हैं। वहीं दूसरी तरफ, बड़े-बड़े नालों के बीच में झुग्गी-झोपड़ियां दिख रही हैं, जो दूर से देखने पर जंगल की झाड़ियों की तरह लग रही हैं। झुग्गियों के आस-पास एक खास किस्म की दुर्गंध व्याप्त है। यह कल्पना करना भी मुश्किल लग सकता है कि 5 गुणा 5 फुट के कमरे में पूरा परिवार रहता है। पति-पत्नी और बच्चे मिलाकर पांच से आठ लोग एक झुग्गी में रहते हैं। गलियां ढाई से तीन फुट चौड़ी हैं। इन्हीं गलियों में गन्दी नालियां भी बहती रहती हैं। यहां-वहां बच्चे पाखाना कर रहे हैं और वहीं आस-पास ही लोग भोजन भी कर रहे हैं। इन झुग्गियों में वे लोग रहते हैं, जिनके दम पर यह शहर चल रहा है। ये सारे के सारे यदि एक दिन काम पर न जायें, तो हाहाकार मच जाय।

दोपहर में जब हम नौकरी की तलाश में कारखाना-दर-कारखाना भटक रहे थे, एक भव्य महलनुमा मकान से कई लोग एक साथ निकलते दिखाई दिये। इनमें ज्यादातर सोलह से लेकर पच्चीस वर्ष की उम्र के थे। वेशभूषा और चाल-ढाल में ये अपने जैसे ही थे, इनलोगों का इस भव्य मकान में क्या काम रहा होगा, हमें आश्चर्य हो रहा था। पूछने पर पता चला कि ये यहां पर मजदूर हैं और ऐसे ढेरों कारखाने नोएडा भर में हैं। हम यहां से वहां दिन भर घूमते रहे, लेकिन किसी कारखाने में काम नहीं मिला। ज्यादातर जगह तो गेट से ही भगा दिया गया, कहीं बात भी हुई तो बारह से चौदह घण्टे काम के लिए महीने में मात्र बारह सौ से तेरह सौ रुपये तक की। थक-हार कर उदास मन से एक कालोनी से गुजरते हुए वापस आ रहे थे, तभी रास्ते में 'जनचेतना' के सचल बिक्री वाहन पर नजर पड़ी। इसके सामने दो साथी 'जनचेतना' का नीला जैकेट पहने हुए खड़े थे, जिसकी पीठ पर भगत सिंह का प्रसिद्ध उद्धरण लिखा था "इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है"। इन दो साथियों में से एक से हम पहले से परिचित थे और इनके इस मिशन से भी। दिन भर नोएडा के कारखानों की खाक छानने के बाद अचानक इन साथियों के मिल जाने से हमारे मुरझाये चेहरों पर फिर एक रौनक आ गई।

लोग आ-जा रहे थे। कुछ लोग उत्सुकता एवं कौतुहल के साथ इस सचल पुस्तक प्रदर्शनी की ओर आकृष्ट हो रहे थे। हम भी वहां पर नई आयी पुस्तकों को उलट-पुलट रहे थे। इसी बीच पीछे से एक आवाज आयी 'अरे ओ कल्लू! रुक तो, आज इन लोगों से भी निबट लेता हूं। एक ठेला मजदूर अपने ठेले को किनारे खड़ा कर हमारी तरफ आ रहा था। बाल बिखरे हुए, दाढ़ी बेतरतीब और शरीर में कई जगह कालिख पुती हुई थी। उसने सीधे आकर 'जनचेतना' के ठेले का पूरा मुआइना किया और किताबें उलट-पुलट कर देखने लगा। उसकी नाक पर ताजा घाव का निशान था। हाथ में भी चोट लगी हुई थी, खून अभी पूरी तरह जमा नहीं था। उसकी दाहिनी हाथ की दो उंगुलियां टेढ़ी-सी थीं, लगता था कभी चोट लगने के बाद सही इलाज न हो पाने के कारण ऐसा हो गया।

ठेला मजदूर ने किताबों और पत्र-पत्रिकाओं पर एक नजर मार लेने के बाद हम सभी से जिन्दादिली के साथ हाथ मिलाया और कहने लगा कि कई दिनों से किताबों से सजे हुए इस ठेले को देख रहा था। आज रहा नहीं गया तो सोचा कि इस बारे में जानकारी हासिल कर ही ली जाये कि ये लोग कौन हैं और क्या चाहते हैं? हमारे साथियों ने उसे 'जनचेतना' के पूरे मिशन के बारे में बताया। वह गौर से सुनता रहा। बीच-बीच में एक जिज्ञासा और उत्तेजना का भाव उसकी आंखों में चमक उठता था। उसने मजदूर अखबार 'बिगुल' और एक पुस्तिका 'मकड़ा और मक्खी' को खरीदकर ऐसे सहेजा कि जैसे कोई कीमती सामान हो।

उसने बताया कि उसका नाम सरवर अली है और वह नोएडा से दिल्ली प्रतिदिन लोहे का सामान जैसे- छड़ वगैरह ढोने का काम करता है। कभी-कभी तो वह ठेले पर सामान लेकर मेरठ तक जाता है। निर्विकार भाव से वह अपनी जिन्दगी की दास्तान सुना रहा था, "वैसे तो मैं भी चाहता हूं कि इस उम्र में आराम करूं या हल्का काम करूं, लेकिन हल्का काम मिलता कहां है? अगर मिले भी तो दो वक्त की रोटी ही नहीं चल पायेगी। बच्चों के दवा-इलाज की तो बात ही छोड़िये। आप ये जो चोट के निशान देख रहे हैं, लोहे की छड़ लादते समय छड़ गिर पड़ी। हाथ टूटते टूटते बचा। दायें हाथ की दो उंगुलियां तो पहले ही टूट चुकी हैं। आप लोग बुरा मत मानना, मैंने थोड़ी सी शराब पी रखी है। वैसे तो मैं अपनी खोली पर ही जाकर पीता हूं। लेकिन क्या करूं आज दर्द बरदाश्त ही नहीं हो रहा था। यदि डॉक्टर के पास जाता तो दिन की कमाई उसे ही दे देनी पड़ती, तब बच्चों का क्या होता? इसीलिए यह देशी इलाज कर लिया।" सरवर अली के व्यवहार में कोई ऐसी चीज थी कि लग रहा था कि जैसे कोई अपना पुराना साथी हो। उसने उत्साहपूर्वक हमें अपना पता दिया और आग्रह किया कि आज ही हम लोग उसके घर पर पहुंचे।

रात साढ़े आठ बजे 'जनचेतना' के एक साथी के साथ मैं सरवर अली से मिलने चल दिया। हमें नोएडा सेक्टर-22 चौड़ा गांव की तरफ जाना था। अमीरों के स्वर्ग से गुजरते हुए हमने नरक में प्रवेश किया। सरवर अली ने हमें जो पता दिया था, उसे पूछते हुए हम एक दड़बेनुमा मकान के सामने जा पहुंचे। कोने में एक ठेलारिक्शा खड़ा था। हमने सरवर अली को आवाज लगाई। आदमियों के इस बिल में से सरवर अली प्रकट हुए। सरवर ने तपाक से अपना हाथ आगे बढ़ाया और बोला "आइये, अन्दर आ जाइये। बाहर अन्धेरे में तो हम एक दूसरे का चेहरा भी ठीक से नहीं देख पायेंगे।"

हम दोनों लोग अन्दर पहुंचे। सरवर ने अपने परिवार से परिचय कराया। सबसे बड़ी लड़की 13 वर्ष, दूसरे नंबर की 11 वर्ष, तीसरे नंबर पर लड़का 9 वर्ष, चौथी लड़की 6 वर्ष, पांचवी लड़की 4 वर्ष तथा सबसे छोड़ा लड़का डेढ़ वर्ष; कुल मिलाकर चार लड़कियां और दो लड़के। सरवर ने अपनी पत्नी की ओर मुस्कराते हुए हम लोगों से कहा, "भई, यही हमारा छोटा-सा सुखी परिवार है"। हम दोनों को मिलाकर कमरे में दस इंसान बैठे थे। बैठे क्या, बस ठुंसे हुए थे। छ: फुट गुणा छ: फुट से बड़ा कमरा नहीं था यह। इसी में सरवर की पूरी गिरस्थी चलती थी। सरवर ने अपनी बड़ी बेटी को चाय बनाने के लिए कहा और अपने बारे में बताने लगा, "मैं इटावा जिले का रहने वाला हूं। मेरी पत्नी भी वहीं की रहने वाली है। बहुत गरीब परिवार में मैं पैदा हुआ। बचपन में पढ़ाई में तेज होने के बावजूद पांचवी क्लास के बाद मुझे स्कूल छोड़ना पड़ा और यहां दिल्ली आकर मजदूरी करने लगा। पढ़ाई तो छूट गई, पर जब भी मौका मिलता है और पढ़ने के लिए कुछ हाथ लगता है तो पढ़ता जरूर हूं। आप मुझे बुरा कहें या भला लेकिन मुसीबतों के इतने थपेड़े सहने के बावजूद आज भी कोई अमीर आदमी अपनी अमरीयत झाड़ने लगता है तो खून खौल उठता है। कभी-कभी तो सोचता हूं कि हमारा खून निचोड़कर महल खड़ा करने वाले इन सभी अमीरों को खत्म कर दिया जाय, हमारी तबाह जिन्दगी का कारण यही हैं।" सरवर भावावेश में आ गया। वह बातचीत का रुख बदलना चाह रहा था और यह अच्छा हुआ कि चाय आ चुकी थी। हम लोग चाय पीने लगे।

अपनी पत्नी की ओर इशारा करते हुए सरवर ने कहा, "हम लोगों ने अपनी मरजी से शादी की। आप मेरी औरत से भी पूछ सकते हैं। हम दोनों के घर वाले बहुत नाराज थे। फिर भी हम लोगों ने घर से भागकर शादी कर ली। एक अरसा बीत गया तो घर के लोग भी आने-जाने लगे। मैं और मेरी बीवी दोनों लोग नमाज नहीं पढ़ते हैं। सच पूछिए तो हमको धर्मों से ही नफरत है। जब हम लोग इन्सान के रूप में पैदा हुए हैं तो आखिर ये कौन लोग हैं जो हमारे बीच जाति और धर्म का प्रचार कर हमें आपस में लड़ाते हैं और हमारी जिन्दगी को और बदतर बना देते हैं। हमें कई बातें समझ में नहीं आती, हमें समझाइये। आप हमें ऐसी किताब भी दीजिए, जिसे हम पढ़ सकें।"

हम सब लोग बैठे हुए सरवर की कहानी सुन रहे थे। सरवर का डेढ़ वर्ष का बच्चा घुटनों के बल चलते हुए बीच-बीच में अपनी ओर ध्यान अकर्षित कर रहा था। जब हम दोनों गौर से सरवर को सुन रहे थे तो वह मेरे साथी की गोद में आकर बैठ गया। हम लोग उसके साथ खेलने लगे। मैंने सरवर से कहा कि वह शराब पीना क्यों नहीं छोड़ देता? मेरी बात सुनकर सरवर और उसकी पत्नी ऐसे हंस पड़े जैसे मैंने कोई मजाकिया बात कह दी हो। वह बोला, "वैसे हम चाहें तो एक बूंद भी न पीयें। लेकिन चोट लगने पर या हाड़तोड़ मेहनत करने के बाद अगर मेरे बच्चे मेरी बहुत सेवा करें, तब भी एक-दो घण्टे मेरे हाथ-पांव दबा देंगे, पर जब रात में दर्द बढ़ेगा और नींद नहीं आयेगी, तो क्या मैं लगातार काम कर पाऊंगा?" सरवर, उसकी पत्नी और बच्चों से विदा लेकर जब हम लौट रहे थे तो बार-बार सरवर की जिन्दगी की तस्वीर आंखों के सामने आ जा रही थी। ऐसे कितने ही सरवर अली हैं, जिन्हें नारकीय जीवन जीने पर मजबूर कर दिया गया है।

नोएडा के पास कोई पुनर्वास नीति नहीं

(बिगुल प्रतिनिधि)

नोएडा (गौतम बुद्धनगर)। नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण (नोएडा) की स्थापना 1976 में हुई थी। राजधानी दिल्ली के करीब उद्योगपतियों को बेहतर बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराने की योजना के तहत नोएडा का गठन हुआ था। लेकिन सिर्फ बुनियादी ढांचे के बूते ही उद्योग-धन्धे तो चल नहीं सकते। श्रमशक्ति के बिना बेहतर से बेहतर बुनियादी ढांचा बेकार है। इसलिए नोएडा ने शुरुआत में श्रमशक्ति की इस जरूरत को पूरा करने के लिए उत्तर प्रदेश और बिहार के 'लेबर सप्लायर बेल्ट' से बसों-ट्रकों में लाद-लादकर मजदूरों को बुलाया और झुग्गियां बसने दीं। आज यही झुग्गियां नोएडा की आंखों की किरकिरी बन चुकी हैं। नोएडा की चौड़ी-चौड़ी सड़कों आलीशान औद्योगिक इमारतों, कोठियों और चकाचौंध भरे बाजारों के बीच में ये झुग्गियां अब नोएडा के नये स्वयंभू जागीरदारों की आंखों में चुभने लगी हैं। फर्राटा भरते-चमचमाते दुपहिया-चार पहिया वाहनों के बीच मजदूरों की साइकिलें बासमती चावल में कंकड़ की तरह खटकने लगी हैं। लेकिन नोएडा की यह चकाचौंध जिन मजदूरों के दम पर है उनके लिए नोएडा ने बीते 27 वर्षों में कोई आवास नीति नहीं बनायी। यहां रहने वाली मध्यवर्गीय और 'धनपशु' आबादी के लिए तो नोएडा ने आकर्षक नीतियां तैयार की पर झुग्गीवालों के लिए उसे फुर्सत कहां! इस समय नोएडा में सेक्टर- 4, 5, 8, 9 व 10 की झुग्गियों को मिलाकर लगभग 15 हजार झुग्गियां हैं। लगभग 60- 70 हजार आबादी इनमें रहती है। झुग्गियों का एक झुरमुट सेक्टर 16 में भी है।

आज नोएडा इन बसे-बसाये आशियानों को उजाड़ने पर आमादा है। उसे इस बात से कोई लेना-देना नहीं कि उजाड़े गये लोग कहां जायेंगे, कैसे जियेंगे। इन झुग्गियों के पुनर्वास के लिए कोई नीति नहीं है, नोएडा के पास। इन झुग्गियों में रहने वालों के लिए 1988 में राशन कार्ड भी दिये गये और इसी वर्ष इनके नाम मतदाता सूची में भी दर्ज किये गये। इस समय झुग्गियों के मतदाताओं की संख्या लगभग 40,000 है। विद्युत विभाग द्वारा इन बस्तियों में कई वर्ष पूर्व

स्थायी विद्युत कनेक्शन भी दिये गये हैं। नोएडा प्राधिकरण द्वारा भी झुग्गियों के आसपास सुलभ शौचालय, चल शौचालय तथा नियमित सफाई की व्यवस्था भी कई साल पहले से की गयी है। प्राधिकरण द्वारा इन झुग्गियों का कई बार सर्वेक्षण भी कराया जा चुका है।

गौरतलब है कि उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती का गृहजनपद भी गौतमबुद्धनगर ही है। इसका नामकरण भी उन्होंने ने किया है। लेकिन दलितों की रहनुमाई का दम भरने वाली मायावती के लिए इन झुग्गियों में रहने वाले गरीबों की सुध लेने की फुर्सत नहीं। वह तो उद्यमियों को लुभाने, औद्योगिक मालों की बेरोकटोक आवाजाही के लिए 'एक्सप्रेस हाइवे' बनाने जैसी योजनाओं को अमल करने में ही व्यस्त है। जबकि इन झुग्गियों में रहने वाली लगभग आधी आबादी दलितों की ही है। स्थानीय'जनप्रतिनिधियों' के लिए भी झुग्गीवाले सिर्फ 'वोट बैंक' हैं। जब-जब चुनाव करीब आता है तब-तब ये चुनावी बरसाती मेढक आश्वासनों का पिटारा खोल देते हैं और अपनी फितरत के मुताबिक चुनाव बीतने पर शीतनिद्रा में चले जाते हैं।

वादा करके मुकरने में नोएडा के अधिकारी भी चुनावी नेताओं के कान चबाते हैं। वर्ष 2001 में सेक्टर-11 की झुग्गियों को हटाने के बाद प्राधिकरण ने बाकायदा सार्वजनिक सूचना छपवाकर उजाड़े गये झुग्गीवासियों को 24-24 वर्गमीटर भूखण्ड देने का आश्वासन दिया था पर आज तक इस पर अमल नहीं किया गया। लगभग दो साल पहले 'श्रमिक कुंज' नामक एक नयी योजना पेश करते हुए प्राधिकरण ने इस आवासीय कालोनी में बने-बनाये घर आवण्टित कराने की घोषणा की। झुग्गीवासियों ने इस योजना में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। इसका प्रमुख कारण आवण्टन के लिए काफी बड़ी प्रीमियम राशि का होना था जो इन गरीबों के बूते के बाहर की चीज है। दूसरे मुर्गी के दड़बे जैसे बने इन तीन मंजिला भवनों में परिवार समेत रहना भी मुश्किल था। बिजली, पानी, शौचालय और पार्क, स्कूल, अस्पताल जैसी सुविधाओं की बात करना भी बेकार है। उजाड़ी गयी झुग्गियों को बसाने का सिर्फ एक अपवाद अब तक सामने आया है। कई साल पहले सेक्टर- 26 की झुग्गियों के उजाड़े गये लोगों को खोड़ा कालोनी में भूखण्ड देकर बसाया गया था।

नोएडा के इस रवैये को देखते हुए इतना साफ है कि केवल एक ही सूरत में किसी तरह की पुनर्वास नीति के लिए बाध्य किया जा सकता है- झुग्गीवासियों का एकजुट संघर्ष

साप्ताहिक बाजार भी प्राधिकरण के निशाने पर

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा (गौतमबुद्धनगर)। 'बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है' वाली कहावत इस बाजार व्यवस्था पर पूरी तरह लागू होती है। बड़ा पूंजीपति छोटे पूंजीपति को, बड़ी खेती वाले छोटी खेती वाले को और बड़ा दुकानदार छोटे दुकानदार को निगले बिना खुद को जिन्दा ही नहीं रख सकता। इसका एक ताजा उदाहरण पिछले दिनों सामने आया। बीते 14 फरवरी को 'संयुक्त मार्केट वेलफेयर एसोसियेशन' की बैठक में नोएडा के मुख्य कार्यपालक अधिकारी डा. ओम प्रकाश ने पूरी बेहयाई से कहा कि अब जगह-जगह लगने वाले साप्ताहिक बाजार बन्द किये जायेंगे। उन्होंने दलील दी कि साप्ताहिक बाजारों की वजह से महंगी दरों पर प्राधिकरण से खरीदी गयी दुकानें चल नहीं पा रही हैं। बड़े दुकानदारों की लूट का एकछत्र राज कायम करने के लिए इससे बेहया दलील भला और क्या हो सकती है!

नोएडा प्रशासन अगर इस फैसले को लागू करवाता है तो इसका असर क्या होगा, यह बताने की जरूरत नहीं। इससे साप्ताहिक बाजारों में दुकानें लगाने वाले छोटे गरीब दुकानदारों की रोजी उजड़ने के साथ ही इन बाजारों से अपनी जरूरत की चीजें खरीदने वाले गरीबों की जिन्दगी पर भी यह भारी पड़ेगा। भीषण महंगाई के इस जमाने में गरीबों को इन बाजारों में सस्ते दामों पर कामचलाऊ चीजें मिल जाया करती हैं जिससे किसी तरह गृहस्थी की गाड़ी खिंचती रहती है। इन बाजारों में कपड़े-लत्ते, बर्तन-भांड़े से लेकर घरेलू और रोजमर्रा के इस्तेमाल की लगभग सभी चीजें मिल जाया करती हैं। ये बाजार नोएडा के गरीबों मजदूरों की जिन्दगी का अभिन्न हिस्सा बन गये हैं। लेकिन नोएडा प्रशासन बड़े दुकानदारों के मुनाफे की चौकीदारी में इन्हें उजाड़ने का मन बना चुका है।

पिछले दस-बारह सालों से नयी आर्थिक नीतियों के तहत तमाम सरकारें एक से बढ़कर एक जो गरीब-मजदूर विरोधी फैसले ले रही हैं। जिस तरह नये-नये काले कानून पास किये जा रहे हैं उसे देखते हुए प्राधिकरण के इस फैसले में अचरज वाली कोई बात नहीं है। तमाम सरकारों द्वारा देशी-विदेशी पूंजीपतियों और बड़े व्यापारियों की बेशर्म तरफदारी से इनके हौसले आज बुलन्दी पर हैं। नोएडा सहित देश के तमाम औद्योगिक इलाकों में पूंजीपति अपने मुनाफे की हवस शान्त करने के लिए मजदूरों के खून की आखिरी बूंद तक निचोड़ लेने के लिए आमादा हो चुके हैं। काम के घण्टों की कोई सीमा नहीं रह गयी है। पक्का काम मिलना लगभग बन्द हो गया है। अब अधिकांश काम कैजुअल, दिहाड़ी और ठेके पर ही कराया जा रहा है। मजदूरी बस उतनी मिल पा रही है कि किसी तरह मजदूर जिन्दा रहे और पूंजीपति का मुनाफा बढ़ता रहे। कहीं प्रदूषण के नाम पर कारखानों को बन्द कर मज़दूरों की रोजी-रोटी छीनी जा रही है तो कहीं सुन्दरीकरण के नाम पर झुग्गियों को उजाड़ा जा रहा है। नोएडा की झुग्गियों को उजाड़ने पर भी स्थानीय प्रशासन आमादा हो चुका है। पिछले दिनों सेक्टर- 44 की झुग्गियों को साजिशाना ढंग से आग के हवाले कर सैकड़ों मजदूर परिवारों का आशियाना जला दिया गया। बाकी झुग्गियों पर भी तलवार लटकी हुई है। इसी क्रम में अब साप्ताहिक बाजार भी प्राधिकरण के निशाने पर आ गया है।

नोएडा प्रशासन आज अपनी मनमानी करने पर इसलिए आमादा हो चुका है क्योंकि नोएडा के मजदूरों का कोई मजबूत संगठन आज नहीं मौजूद है। मजदूर राजनीति के नाम पर अलग-अलग किस्मों के दलालों का बोलबाला है। रेहड़ी-खोमचे वाले और साप्ताहिक बाजारों के छोटे दुकानदार भी एकजुट और संगठित नहीं हैं। इसी का फायदा उठाते हुए नोएडा प्रशासन खुली अन्धेरगर्दी पर आमादा है।

लेकिन जब लड़ना अपना वजूद बचाने की शर्त बन जाये तो भाग्य भरोसे बैठे रहने वाले लोग भी लड़ाई के मैदान में कूद पड़ते हैं। नोएडा के मजदूरों और समूची गरीब मेहनतकश आबादी धीरे-धीरे इसी मुकाम पर खड़ी होती जा रही है। उन्हें एकजुट और संगठित होना ही होगा क्योंकि भाग्य भरोसे बैठने का मतलब होगा-निश्चित तबाही। जब लड़ने की जरूरत पैदा हो जाती है तो लड़ाई का ढंग भी आ ही जाता हैं आज भले ही रहजन रहबर बने हुए हैं, लेकिन ऐसी स्थिति हमेशा नहीं बनी रहेगी। आने वाले दिनों में गरीबों-मेहनतकशों के बीच से अपने रहनुमा पैदा होंगे। यह निश्चित है। यही इतिहास का तजुर्बा है।

(पेज 1 से आगे)

झुग्गी-झोपड़ियों-बस्तियों के बीच से नया क्रान्तिकारी नेतृत्व पैदा करना होगा

प्राधिकरण कार्यालय पर अलग से एक प्रदर्शन आयोजित किया जो फुसफुसा कर रह गया। बहुत थोड़ी संख्या में झुग्गीवासी इसमें शामिल हुए। झुग्गीवासियों के असली रहनुमा होने की दावेदारी के लिए मची इस होड़ और उठापटक से प्राधिकरण के अधिकारियों की बांछें खिल उठीं। पन्द्रह दिन बाद 24 अप्रैल को जब झुग्गियों के कुछ नेता नोएडा के मुख्य कार्यपालक अधिकारी डा. ओम प्रकाश से मिलने गये तो उन्होंने छूटते ही पूछा कि 'पन्द्रह दिन हो गये, आप लोगों ने झुग्गियां अभी खाली नहीं की।' मुख्य कार्यपालक अधिकारी के इस रवैये के सामने मिलने गये नेता अकबका कर रहे गये।

प्राधिकरण के इस पैंतरापलट से झुग्गीवासियों में जबर्दस्त गुस्से की लहर फैल गयी है। लेकिन किसी सूझबूझ वाले क्रान्तिकारी नेतृत्व और झुग्गीवासियों की मजबूत एकजुटता के अभाव में इस गुस्से को संघर्ष की सही दिशा में मोड़ने का सवाल अभी जहां का जहां पड़ा हुआ है। मौसमी चुनावी नेताओं में खुद को झुग्गीवासियों का असली रहनुमा साबित करने की होड़ और तेज हो गयी है। झुग्गी-झोपड़ी संयुक्त संघर्ष मोर्चा टूट चुका है और अब यह केवल समाजवादी पार्टी का मंच बनकर रह गया है। बाकी सभी अन्य पार्टियों के नेताओं ने लम्बे समय से सोयी पड़ी नोएडा झुग्गी-झोपड़ी एसोसियेशन को साझा मंच बनाकर उसमें नये सिरे से जान फूंकने की कोशिश भी शुरू कर दी है। एसोसियेशन के अध्यक्ष 'इण्टक' नेता डा. के.पी.ओझा हैं जिनके बारे में कहा जाता है कि झुग्गियों को बसाने, झुग्गीवासियों को राशन कार्ड और पहचान पत्र दिलवाने के साथ ही वोटर बनवाने के लिए इन्होंने एसोसियेशन के बैनर तले एक समय काफी लड़ाई लड़ी थी। अपनी इसी साख के बूते एक बार फिर एसोसियेशन को झुग्गीवासियों का असली रहनुमा साबित करने की कोशिश जारी है। इसके तहत बीते 2 मई से अलग अलग झुग्गियों में नुक्कड़ सभाओं का सिलसिला जारी है। एसोसियेशन की ओर से मुख्यमंत्री मायावती उनके मंत्रिमण्डल में शामिल जिले के अन्य मंत्रियों को पत्र भी भेजे गये हैं। पत्र में पुनर्वास की ठोस योजना के बिना झुग्गियों को न उजाड़ने की मांग की गयी है। यहां गौरतलब बात यह है कि गौतमबुद्ध नगर मुख्यमंत्री मायावती का गृहजनपद है और इसका नामकरण भी उन्होंने ही किया था। दिलचस्प तथ्य यह भी है कि नोएडा के सी.ई.ओ.डा. ओम प्रकाश मुख्यमंत्री के ही हवाले से झुग्गियों को हटाने की बात कर रहे हैं।

एसोसियेशन के पदाधिकारी स्थानीय जनप्रतिनिधियों से भी मिलकर यही मांग कर रहे हैं। नुक्कड़ सभाओं में ऐलान किया जा रहा है कि अगर उनकी मांगें नहीं मानी गयीं तो जनप्रतिनिधियों का घेराव किया जायेगा। एसोसियेशन में समाजवादी पार्टी के अलावा बाकी सभी चुनावी पार्टियों के प्रतिनिधियों और चुनावी पार्टियों के प्रतिनिधियों और शिवसेना-बजरंग दल जैसे संगठनों के नुमाइन्दों के साथ ही कई झुग्गी स्तर के नेता भी शामिल हैं। पहले सीटू ने भी एसोसियेशन में शामिल होने की घोषणा की थी और उसके नेता उदयचन्द्र झा कार्यकारिणी में शामिल भी हुए थे पर बाद में उन्होंने अपनी ढपली अलग बजाते हुए एक नया मोर्चा गठित करने की कवायद शुरू कर दी है। दरअसल 'सीटू' की दुविधा यह है कि राष्ट्रीय और प्रदेश की राजनीति में उसकी गोटी समाजवादी पार्टी के साथ फिट बैठती है, ऐसे में स्थानीय पैमाने पर वह समाजवादी पार्टी के विरोधी दलों के साथ किस तरह तालमेल करे।

'बिगुल' प्रतिनिधियों ने सभी झुग्गियों में व्यापक स्तर पर सम्पर्क कर झुग्गीवासियों की भावनाओं को जानने की कोशिश की। पता चला कि झुग्गीवासियों में प्राधिकरण के फैसले से जबर्दस्त गुस्सा है और वे अपना आशियाना उजड़ने से बचाने के लिए लड़ना भी चाहते हैं। लेकिन लड़ाई की अगुवाई के लिए जो उठापटक मची है उसे लेकर वे मायूस हैं। 'बिगुल' प्रतिनिधियों ने यह बात महसूस की कि अगर एकजुट संघर्ष का कोई भी मंच उभरकर सामने आता है तो झुग्गीवासी संघर्ष से पीछे नहीं हटेंगे।

लेकिन सबसे अहम सवाल फिर भी यही है कि क्या झुग्गी के इतने स्वयंभू रहनुमाओं की मारामारी के बीच एकजुट संघर्ष का कोई साझा मंच उभरकर सामने आ पायेगा? चुनावी राजनीतिक दलों के नेताओं का जो चरित्र आज सामने आ चुका है उसे देखते हुए ऐसा होना बेहद मश्किल काम दीख रहा है।

प्राधिकरण के मौजूदा रुख और सरकारी नीतियों की दिशा को देखते हुए एक बात बिल्कुल साफ हो चुकी है कि अगर झुग्गीवासियों ने एकजुट होकर लड़ाई नहीं लड़ी तो नोएडा का बुलडोजर उनके आशियानों को रौंदने में कोई रहम नहीं बरतने वाला है। दरअसल, सच्चाई तो यह है कि यह नोएडा का नहीं सरकारी नीतियों का बुलडोजर है, नोएडा तो सिर्फ ड्राइवर की सीट पर बैठा है। बिगुल मजदूर दस्ता के कार्यकर्ता झुग्गीवासियों के बीच व्यापक और सघन रूप से सम्पर्क कर यही बात उनके दिलों में बैठाने की कोशिश कर रहे हैं, जिससे वे यह समझ सकें कि लड़ाई बहुत आसान नहीं है। आवास के अधिकार को जीने का अधिकार बनाकर लड़ना होगा। दस्ते के कार्यकर्ता फिलहाल इस फौरी लड़ाई के लिए झुग्गीवालों की रहनुमाई का दावा करने वाले लोगों के ऊपर एक साझा मंच पर आने के लिए दबाव बनाने की रणनीति का प्रचार भी कर रहे हैं। साथ ही ये कार्यकर्ता अपनी दूरगामी लड़ाई के लिए फर्जी मसीहाओं से पिण्ड छुड़ाकर अपना फौलादी क्रान्तिकारी संगठन बनाने और झुग्गीवासियों के बीच से नया क्रान्तिकारी नेतृत्व पैदा करने की जरूरत के बारे में भी प्रचार कर रहे हैं।

झुग्गीवासियों को यह अच्छी तरह समझना होगा कि यह लड़ाई कोई आखिरी लड़ाई नहीं है आगे एक बड़ी लड़ाई का इन्तजार कर रही है। झुग्गी-झोपड़ियों और तमाम मजदूर बस्तियों में रहने वाले गरीब-गुरबां लोगों और तमाम मेहनतकश लोगों के खून पसीने के दम पर ही यह देश खड़ा है। लेकिन यह मेहनतकश आबादी 'आजादी' के 56 सालों बाद भी आज अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए मोहताज है। मेहनतकशों का खून पसीना पूंजीपतियों, अफसरशाहों और नेताशाहों का स्वर्ग बनकर चमक रहा है। जबकि उनकी जिन्दगी नरक से भी बदतर बना दी गयी है। इस उल्टे राज को सीधा करने की कठिन और लम्बी लड़ाई लड़ने के लिए झुग्गीवालों को ही आगे आना होगा नहीं तो यह मोहताजी कभी खत्म नहीं होगी। जब तक देश के समूचे पैदावार पर, राज काज, पर समाज के पूरे ढांचे पर मेहनतकश जनता का कब्जा नहीं होगा तब तक न हमारा वर्तमान सुधरेगा और न ही आने वाली पीढ़ी का भविष्य।

इसलिए सभी झुग्गी-झोपड़ियों, गरीब-मजदूरों की तमाम बस्तियों से मेहनतकशों को जागना होगा, उठ खड़े होना होगा, संगठित होना होगा, अपने बीच से नया क्रान्तिकारी नेतृत्व पैदा करना होगा। बिना अब कोई देर किये, बिना एक पल गवाएं।

कामरेड दोन किहोते

(कुछ कैरियरवादी और कठमुल्ले राजनीतिक नौदौलतियों को समर्पित)

● मनबहकी लाल

दोन किहोते उतर पड़ा है पॉलिमिक्स के मैदान में।
गत्ते की तलवार भाँजता, शत्रु-दलन- अभियान में।

सिर पुरखों का जूता मानो नेपोलियनी टोप है।
गोले हों फुसफुसे भले ही, क्या चंगेज़ी तोप है।
लिल्ली घोड़ी पर सवार, फूला-अकड़ा है शान में।
दोन किहोते उतर पड़ा है......

'क्या न करें', 'क्या करें'- बताता लेनिन के अन्दाज़ में।
नये-नये मुल्ले को मिलता खूब स्वाद है प्याज़ में।
भले आँख में पानी आवे, सन-सन होवे कान में।
दोन किहोते उतर पड़ा है......

ऐसे-ऐसे नारे देगा ऐसे मंत्र उचारेगा।
अबतक जो न हुआ वो सब कुछ छनभर में कर डालेगा।
चुटिया बाँधके पिला हुआ है गहरे अनुसंधान में।
दोन किहोते उतर पड़ा है........

चिन्ता है दिन-रात कि नाम आवे कैसे इतिहास में।
सर्टिफिकेट भी परम्परा के वारिस का हो पास में।
लोहा माने दुनिया फिर साष्टांग करे सम्मान में।
दोन किहोते उतर पड़ा है........

बोधिज्ञान कुछ देर से मिला इसीलिए हड़बड़ में है।
'ये कर डालें; 'वो कर डालें' – दिल -दिमाग़ गड़बड़ में है।

इंक़लाब का केन्द्र बने तो जान आवे फिर जान में।
दोन किहोते उतर पड़ा है........

ज्ञान-धुरी जो समझ रहा वो कठमुल्लों का खूँटा है।
हाथी समझे है खुद को, लेकिन बौराया च्यूँटा है।
परम सत्य का महकउवा तम्बाकू डाले पान में
दोन किहोते उतर पड़ा है.........

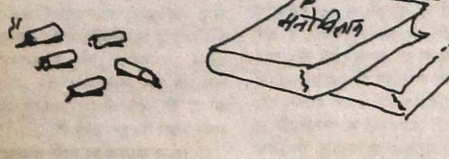

टिप्पणी:- दोन किहोते स्पेनी उपन्यासकार **सर्वान्तेस** के प्रसिद्ध उपन्यास 'दोन किहोते' का मुख्य पात्र था, जो मध्यकालीन शूरवीरों के बहादुराना कारनामों से इतना प्रभावित था कि उन्हें स्वयं दुहराने की फैण्टेसी में जीने लगा था। नतीजतन वह बार-बार हास्यास्पद स्थिति में जा फँसता था, पर उनके लिए भी कोई काल्पनिक तर्क ढूँढ लेता था और वास्तविकताओं से कटा हुआ तरह-तरह के मंसूबे बाँधता रहता था। वह यूरोपीय समाज का एक ऐसा ही मुहावरा बन गया जैसे कि हमारे यहाँ शेखचिल्ली।

अनुराग ट्रस्ट उद्घाटन समारोह

बच्चों को बचाओ! सपनों को बचाओ! भविष्य को बचाओ!

लखनऊ। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता और स्वतंत्रता सेनानी **शिवकुमार मिश्र** ने 15 अप्रैल को बच्चों के स्वस्थ सांस्कृतिक-वैज्ञानिक विकास के लिए समर्पित संस्था **'अनुराग ट्रस्ट'** का उद्घाटन किया। इस मौके पर स्वाधीनता आन्दोलन के अपने क्रान्तिकारी साथियों के अनुभवों को याद करते हुए कहा कि उन शहीदों का सपना एक ऐसे भारत का था जिसमें सभी बच्चे आजाद और खुशहाल हों, लेकिन वह पूरा नहीं हो सका। न केवल करोड़ों बच्चे जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से भी वंचित हैं बल्कि आज के हिंसक, अवैज्ञानिक और स्वार्थी सामाजिक परिवेश में बच्चे ही सर्वाधिक उत्पीड़ित हैं। सांप्रदायिक शक्तियां कोमल बाल मनों में घृणा के बीज बो रही हैं जबकि प्रगतिशील शक्तियां देश के भावी नागरिकों और भावी क्रान्तिकारियों की ओर से आंख मूंदे हुए हैं।

ट्रस्ट की संस्थापक अध्यक्ष वयोवृद्ध पूर्व शिक्षक नेता तथा वामपंथी सामाजिक कार्यकर्ता **कमला पाण्डेय** ने इस अवसर पर अपने वक्तव्य में कहा कि अपने स्वर्गीय पुत्र अनुराग की स्मृति में बच्चों के वैज्ञानिक - सांस्कृतिक विकास के लक्ष्य को समर्पित अनुराग ट्रस्ट की घोषणा से उन्हें लग रहा है कि उनका जीवन एक बार फिर सार्थकता और ऊर्जस्विता से लबरेज हो गया है। दृष्टिहीन और पंगु होने के बाद जिस तरह लेखन कर्म के रूप में निकोलाई आस्त्रोवस्की ने क्रान्ति में भागीदारी की राह ढूंढ़ निकाली थी, उसी तरह रुग्णता और बुढ़ापे की अशक्तता के बावजूद ऐसा लग रहा है कि अपने युवा साथियों के साथ वह एक बार फिर सामाजिक संघर्ष के एक जरूरी मोर्चे पर आ डटी हैं।

उन्होंने कहा कि परिवर्तनकामी शक्तियों ने अपने देश में नई पीढ़ी के निर्माण की काम की काफी हद तक उपेक्षा की है और प्रतिगामी शक्तियों ने इसका काफी फायदा उठाया है।

बाल साहित्य, औपचारिक-अनौपचारिक बाल शिक्षा और बच्चों के बीच सांस्कृतिक काम की प्रगतिशीलों ने बहुत अनदेखी की है। यह व्यवस्था क्रान्तिकारी शक्तियों को बड़े-बड़े शिक्षा-संस्थान खड़े करने की वैसी छूट कतई नहीं देगी जैसी दक्षिणपंथी शक्तियों को मिल जाती है और धन्ना सेठों से सहयोग की मोटी थैलियां भी उन्हें नहीं मिलेंगी। फिर भी जनता की ताकत और सहयोग समर्थन के बूते पर अनौपचारिक और छोटे-छोटे उपक्रमों की कड़ियों के रूप में ही सही बाल साहित्य, बाल शिक्षा, बाल संस्कृति कर्म का एक ताना-बाना एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में खड़ा किया जा सकता है। इन सबका एक वैकल्पिक तंत्र विकसित किया जा सकता है।

उन्होंने बताया कि अनुराग ट्रस्ट के लक्ष्यों और योजनाओं की रूपरेखा इस प्रकार है :

● बच्चों और किशोरों के भीतर स्वस्थ सांस्कृतिक-वैज्ञानिक चेतना और सामाजिक सरोकार पैदा करने के लिए विविध सामाजिक-सांस्कृतिक-शैक्षिक गतिविधियों का संचालन

● 'अनुराग बाल पत्रिका' का प्रकाशन

● बाल साहित्य एवं पोस्टरों का प्रकाशन

● बच्चों की रचनात्मक प्रतिभा के विकास के लिए निबन्ध, रचनात्मक लेखन, भाषण, नाटक, गायन व चित्रांकन प्रतियोगिताओं का आयोजन

● सांस्कृतिक कार्यशालाओं, शिविरों और शैक्षिक-सांस्कृतिक भ्रमण-कार्यक्रमों का आयोजन

● पुस्तकालय, वाचनालय, बाल शिक्षा संस्थान और विशेषकर मजदूर बस्तियों में निःशुल्क बाल-शिक्षा-केन्द्रों का संचालन

● बाल-साहित्य के लेखकों और संस्कृतिकर्मियों को आमंत्रित करके संगोष्ठियों एवं कार्यशालाओं का आयोजन

● साहित्य प्रकाशन कार्य के विस्तार के बाद एक मुद्रण-प्रतिष्ठान की स्थापना के लिए प्रयास करना।

उन्होंने बताया कि कुछ मजदूर संगठनकर्ता नोएडा की एक मजदूर बस्ती में अनुराग ट्रस्ट का निःशुल्क शिक्षण केन्द्र मजदूरों के बच्चों को लेकर शुरू कर चुके हैं। रुद्रपुर (उत्तरांचल) के मजदूर इलाकों में, पन्तनगर विश्वविद्यालय के फार्म मजदूरों की बस्तियों में और गोरखपुर में ऐसे केन्द्र कुछ माह के भीतर ही शुरू हो जाएंगे।

पूर्व शिक्षक नेता तथा पूर्व विधायक **माया चौधरी**, वयोवृद्ध सामाजिक कार्यकर्ता **ठाकुरप्रसाद वैद्य**, सुप्रसिद्ध चित्रकार **हरिपाल त्यागी**, बच्चों की पत्रिका **'नई पौध'** के संपादक और प्रसिद्ध कवि **रामकुमार कृषक** तथा वरिष्ठ कवि **नरेश सक्सेना** ने इस मौके पर कहा कि बच्चों को एक बेहतर दुनिया सौंपना हम सबकी जिम्मेदारी है। बच्चों के लिए बहुत सी संस्थाएं काम कर रही हैं लेकिन एक सुनिश्चित विचार और व्यापक सामाजिक बदलाव के परिप्रेक्ष्य के साथ इस प्रकार की यह पहली शुरुआत है।

इस अवसर पर अनुराग ट्रस्ट की ओर से प्रकाशित बच्चों की चार सचित्र कथा-पुस्तकों का लोकार्पण श्री रामकुमार कृषक ने तथा अनुराग बाल पोस्टर और राहुल सांकृत्यायन के प्रेरक पोस्टर का लोकार्पण श्री हरिपाल त्यागी ने किया। इस अवसर पर **'सांस्कृतिक नव जागरण के साम्प्रतिक कार्यभार और बाल साहित्य'** विषय पर विचार गोष्ठी में विभिन्न वक्ताओं ने बाल साहित्य की ओर ध्यान देने की आवश्यकता व्यक्त की। गोष्ठी में श्रीमती माया चौधरी, श्री ठाकुरदास वैद्य, अरविन्द सिंह, गोरखपुर विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्राध्यापक तथा विज्ञान लेखक डा. जे.पी. चतुर्वेदी और हरिपाल त्यागी ने बच्चों के बीच सांस्कृतिक काम के रचनात्मक तरीके ईजाद करने पर जोर दिया। गोष्ठी की अध्यक्षता रामकुमार कृषक और संचालन सत्यम ने किया।

बच्चों ने इस मौके पर 'तमाशा' नाटक का मंचन किया। रुद्रपुर (उत्तरांचल), सिरसा (हरियाणा), इलाहाबाद, लखनऊ और दिल्ली से आये बच्चों ने सिर्फ दो दिन में यह नाटक तैयार किया था। चित्र-प्रदर्शनी, बाल पोस्टर प्रदर्शनी तथा बाल साहित्य की प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया। 'युद्ध और बच्चे' विषय पर केन्द्रित कार्टून एवं चित्र प्रदर्शनी इस कार्यक्रम का एक प्रमुख आकर्षण रही।

रात में प्रसिद्ध रूसी बाल फिल्म 'इवान का बचपन', चार्ली चैप्लिन की फिल्म 'दि गोल्डरश' तथा बच्चों की फिल्म 'मकड़ी' का प्रदर्शन किया गया।

प्रस्तुति : नमिता

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2000

राहुल सांकृत्यायन की जन्मतिथि (9 अप्रैल) से पुण्यतिथि (14 अप्रैल) तक

राहुल स्मृति समारोह और जन अभियान

"भागो नहीं, दुनिया को बदलो!"

(बिगुल संवाददाता)

लखनऊ। 9 अप्रैल की सुबह लखनऊ की सड़कों पर एक अनूठा जुलूस चल रहा था। आगे-आगे एक बड़ी तिकोनी पोस्टर गाड़ी थी जिसे धकेलते हुए दो युवा कार्यकर्ता चला रहे थे। इसके दोनों ओर महाविद्रोही राहुल सांकृत्यायन की तस्वीर बनी थी और उनकी जोशीली बातों के उद्धरण और प्रेरक संदेश मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे हुए थे। सबसे ऊपर थी यह ललकार, **"आंख मूँदकर हमें समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। हमें अपनी मानसिक दासता की बेड़ी की एक-एक कड़ी को बेदर्दी के साथ तोड़कर फेंकने के लिए तैयार होना चाहिए। ...हमें दाहिने-बायें, आगे-पीछे दोनों हाथों नंगी तलवार नचाते हुए अपनी सभी रूढ़ियों को काटकर आगे बढ़ना चाहिए।"** ऐसे ही दो और पोस्टर वाहन इस अत्यन्त आकर्षक प्रदर्शन यात्रा के बीच में भी चल रहे थे।

यात्रा में शामिल कार्यकर्ताओं ने अपने शरीर पर आगे-पीछे पोस्टर लटका रखे थे जिन पर धार्मिक रूढ़ियों, कट्टरता, पोंगापंथ और जाति भेद के विरुद्ध नारे और राहुल की उक्तियां लिखी हुई थीं। वे रास्ते भर क्रान्तिकारी गीत गाते हुए, नारे लगाते हुए और पर्चे बांटते हुए चल रहे थे और जगह-जगह रुककर सभाएं कर रहे थे। जुलूस के आगे-आगे एक कार्यकर्ता अलम की तरह एक ऊंची तख्ती लेकर चल रहा था जिस पर लिखा था राहुल का प्रसिद्ध संदेश–'भागो नहीं, दुनिया को बदलो!'

यह प्रदर्शन यात्रा राहुल फाउण्डेशन के **'भागो नहीं, दुनिया को बदलो अभियान'** का एक हिस्सा थी। राहुल की जन्मतिथि 9 अप्रैल से उनकी पुण्यतिथि 14 अप्रैल तक लखनऊ के अलग-अलग इलाकों में यह यात्रा निकाली गयी।

पण्डिताऊ गोष्ठियों और कर्मकाण्डी अनुष्ठानों में राहुल को याद करने और उनकी तस्वीर पर माला-फूल चढ़ाकर अगले साल तक अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेने वाले आयोजनों से अलग यह मजदूरों-किसानों के "राहुल बाबा" के विद्रोह के संदेश को आम लोगों तक पहुंचाने का अभियान था।

अलग-अलग दिन लखनऊ के आई टी. चौराहे, विश्वविद्यालय मार्ग, हजरतगंज, लालबाग, निशातगंज, फैजाबाद रोड, इंदिरानगर, निरालानगर, महानगर, डालीगंज, चांदगंज, कपूरथला, अलीगंज आदि इलाकों से गुजरते हुए इस यात्रा के दौरान दर्जनों छोटी-छोटी नुक्कड़ सभाएं की गईं जिनमें वक्ताओं ने जाति-धर्म के आधार पर जनता को बांटकर चुनावी रोटी सेंकने वाले राजनीतिक दलों और साम्प्रदायिक फासिस्टों के खूनी खेल के विरुद्ध नई सामाजिक क्रान्ति के लिए उठ खड़े होने का आह्वान किया।

वक्ताओं ने चौराहे-चौराहे पर जुटने वाली उत्सुक भीड़ को बताया कि आम मेहनतकश जनता को उसकी अपार संगठित शक्ति से परिचित कराना और अन्याय एवं शोषणपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध उसे सामाजिक क्रान्ति के लिए तैयार करना राहुल के जीवन का मिशन था। इसके लिए राहुल ने केवल अपनी कलम और आवाज का ही इस्तेमाल नहीं किया, बल्कि आजादी की लड़ाई और किसानों-मजदूरों के आन्दोलनों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, लाठियाँ खाईं, जेल गये और हर तरह की कुर्बानी दी। आजादी की लड़ाई के दौरान, भगतसिंह की तरह राहुल ने भी कांग्रेसी नेतृत्व के पूँजीवादी चरित्र से जनता को बार-बार आगाह किया और हमेशा इस बात पर जोर दिया कि केवल समाजवाद ही किसानों-मजदूरों और सभी आम लोगों को सच्ची और वास्तविक आजादी दे सकता है। राहुल का यह दृढ़ विश्वास था कि दिमागी गुलामी की बेड़ियों को तोड़े बगैर हम अपनी सामाजिक-

आर्थिक-राजनीतिक गुलामी के खिलाफ लड़ने के लिए संगठित नहीं हो सकते। इसलिए उन्होंने भाग्यवाद, रूढ़िवाद और अतीत-पूजा की प्रवृत्ति पर लगातार चोट की। धार्मिक कट्टरता और धार्मिक रूढ़ियों को वे जनता को निष्क्रिय और गुलाम बनाये रखने का साधन मानते थे। जाति-भेद को वे समाज की जड़ों में पैठा ऐसा दीमक मानते थे जिसने भारतीय मेहनतकश जनता की एकता को खण्ड-खण्ड तोड़कर उसके मुक्ति-संघर्ष की सफलता को असम्भव बना रखा है।

वक्ताओं ने कहा कि बात-बात पर राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय सम्मान की दुहाई देने वाले आज दुनिया की मंडी में देश को खुलेआम नीलाम कर रहे हैं और अमेरिकी डाकुओं के तलवे चाट रहे हैं। दूसरी ओर, ये साम्प्रदायिक फासिस्ट धार्मिक जुनून भड़ककर एक बार फिर पूरे देश को खून का दलदल बना देने पर आमादा हैं।

उन्होंने मेहनतकशों का आह्वान किया कि धार्मिक कट्टरता और जातिभेद की भावना से मुक्त होकर अपनी एकजुटता की ताकत को पहचानें और चुनावी नेताओं और दलाल यूनियनबाजों को लात मारकर कूड़े के ढेर पर धकेल दें। उन्होंने नौजवानों को ललकारा कि अन्याय और जुल्म में डूबा यह देश अगर रसातल को चला जाये तो उनकी नौजवानी किस काम की? उन्होंने बुद्धिजीवियों को आवाज दी कि वे अपना पक्ष चुनें–चंद सुविधाओं के लिए सत्ता की चाकरी बजानी है या सामाजिक संघर्ष के मोर्चे पर कलम के सिपाही की भूमिका निभानी है।

कविता संवाद और कवि गोष्ठी

'राहुल स्मृति समारोह' के तहत 12 अप्रैल का दिन जनता की कविता के नाम रहा। 'कविता संवाद' कार्यक्रम के तहत विशिष्ट कवि के रूप में दिल्ली से आये प्रसिद्ध कवि **विष्णु खरे** ने करीब तीन घण्टे तक अपनी अलग-अलग रंगों की कविताएं सुनाईं और फिर दूसरे सत्र में उन पर कवियों, श्रोताओं और विष्णु खरे के बीच बेहद दिलचस्प और विचारोत्तेजक संवाद चला।

विष्णु खरे ने आपातकाल के दौरान लिखी अपनी प्रसिद्ध कविता 'डरो', नरसिंह राव पर लिखी 'फर्द जुर्म', 'आपकी सलाह चाहिए', 'नेहरू-गांधी परिवार से मेरे रिश्ते' और चे ग्वेवारा पर लिखी 'चे' जैसी राजनीतिक कविताओं से शुरुआत की और फिर 'गुंग महल', 'वाकदीप', 'दोस्त', 'होनहार' जैसी निजी जीवन तथा इतिहास के प्रसंगों पर लिखी उद्वेलित करने वाली अपनी कविताओं का पाठ किया। देश में बढ़ते साम्प्रदायिक फासीवादी खतरे की ओर इशारा करते हुए उन्होंने 'गुजरात', 'चुनौती' और 'हिटलर की वापसी' जैसी तीखी कविताएं पढ़ीं। श्रोताओं की मांग पर विष्णु जी ने 'अंतिम आदमी का बयान', 'लड़कियों के बाप' और 'बेटी' कविताएं प्रस्तुत कीं जिनमें निम्न मध्यवर्गीय जीवन की मार्मिक दृश्यावलियां चित्रित की गयी हैं।

कविता पाठ से पहले अपने वक्तव्य में विष्णु खरे ने कहा कि वह मानते हैं कि इस देश में एक आमूल सामाजिक परिवर्तन की जरूरत है और यह परिवर्तन खूनी क्रान्ति के रास्ते से ही हो सकता है, चुनाव के रास्ते से नहीं। उन्होंने कहा कि आज के युवा कवि हिन्दी के इतिहास के सबसे प्रतिभावान कवियों में से हैं लेकिन उनकी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उन्हें अपनी महान सांस्कृतिक विरासत का पता नहीं है, यदि है तो यह उनकी कविता में परिलक्षित नहीं हो रहा है। उन्होंने कहा कि आज हिन्दी में पचास-साठ बेहतरीन युवा कवि कविताएं लिख रहे हैं पर वे इस देश की अत्यन्त समृद्ध और विविध सांस्कृतिक परम्परा से यदि अपने को जोड़ें तो उनकी कविता नयी शक्ति और ऊर्जा के साथ उभरेगी। उन्होंने कहा कि परम्परा से जुड़ने का अर्थ पुनरुत्थानवाद या परम्परावाद नहीं बल्कि जनता की परम्परा से सम्बन्ध जोड़ना है।

विष्णु जी की कविताओं पर चले संवाद में वरिष्ठ कवि **नरेश सक्सेना**, इलाहाबाद से आये कवि **नीलाभ**, दिल्ली से आये कवि **विमल कुमार**, **रामकुमार कृषक**, कवि एवं चित्रकार **हरिपाल त्यागी**, आलोचक **वीरेन्द्र यादव**, गोरखपुर से आये कथाकार **मदन मोहन**, आलोचक **कपिलदेव**, 'दायित्वबोध' पत्रिका के सम्पादक **अरविन्द सिंह** आदि ने हिस्सेदारी की। कुछ वक्ताओं ने विष्णु जी से प्रश्न किया कि एक ओर वह क्रान्तिकारी बदलाव की बात करते हैं तथा उनकी कविताओं में विषय का अत्यन्त द्वंद्वात्मक 'ट्रीटमेण्ट' दिखायी देता है, लेकिन दूसरी ओर नेहरू-गांधी परिवार को लेकर उनके रुख में यह द्वंद्वात्मक एप्रोच क्यों नहीं दिखता। साम्प्रदायिक ताकतों से लड़ने में कांग्रेस की भूमिका को लेकर उनकी भ्रमपूर्ण सोच पर भी तीखे सवाल किये गये। विष्णु जी ने सभी सवालों के विस्तार से जवाब दिये, हालांकि मौजूदा राजनीतिक परिस्थिति के प्रति अपने स्टैण्ड की व्याख्या करने में उन्हें थोड़ी कठिनाई जरूर हुई।

रात को हुई कवि गोष्ठी में प्रसिद्ध कवि **वीरेन डंगवाल, नीलाभ, नरेश सक्सेना, रामकुमार कृषक, हरिपाल त्यागी, विमल कुमार, पंकज चतुर्वेदी** और **कात्यायनी** ने अपनी कविताएं सुनाईं।

डा. महेश पाल सिंह
स्मृति व्याख्यान

13 अप्रैल को प्रख्यात वामपंथी चिंतक **प्रोफेसर रणधीर सिंह** ने डा. महेश पाल सिंह स्मृति व्याख्यान प्रस्तुत किया जिसका विषय था **'आज का भारत : कठिन विकल्प'**।

उन्होंने कहा कि आज मानवता के सामने केवल दो ही विकल्प हैं–समाजवाद या बर्बरता। यही दो विकल्प आज देश के मेहनतकश अवाम के सामने है। आज चारों ओर फैली बर्बरता के साम्राज्य का खात्मा केवल तभी हो सकता है जब देश का मेहनतकश अवाम नये सिरे से समाजवाद का परचम लेकर उठ खड़ा हो। उन्होंने कहा कि पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में आजादी के बाद विकास की जो राष्ट्रीय परियोजना शुरू की गयी थी, उसका ध्वंस पूंजीवाद के संकट के कारण हो चुका है। इसी ध्वंस से पैदा हुए शून्य में हिन्दुत्व की राजनीति फल-फूल रही है। उन्होंने कहा कि इस शून्य की भरपाई पूंजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी क्रान्तिकारी राजनीति को करनी ही होगी, तभी देश के भीतर फासीवादी ताकतों को फैसलाकुन शिकस्त दी जा सकती है।

प्रो. सिंह ने कहा कि पिछले पांच-छह सालों में ही पश्चिम में समाजवाद के ऊपर जीत का नशा उतरने लगा है और 'कार्ल मार्क्स की वापसी' जैसे लेख चर्चा का विषय बनने लगे हैं। पूंजीवादी दुनिया गहरे आर्थिक संकट, घपलों-घोटालों और बड़ी-बड़ी कम्पनियों के दिवालिया हो जाने की घटनाओं से घिरी हुई है। इराक पर हमला पूंजीवाद के गहरे संकट का ही नतीजा है लेकिन इस युद्ध से यह संकट और भी गम्भीर ही होने वाला है। उन्होंने कहा कि जब तक बाजार और मुनाफे की व्यवस्था कायम रहेगी तब तक लूट के बंटवारे के लिए छोटे-बड़े युद्ध होते रहेंगे और न केवल मानवता बल्कि समूचा पर्यावरण भीषणतम संकटों से घिरा रहेगा।

पूंजीवाद के बुनियादी तर्क का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि केन्द्र में समृद्धि और परिधि में गरीबी का पैदा होना पूंजीवादी उत्पादन की विशेषता है। उन्होंने देश में 1947 के बाद हुए राजनीति आर्थिक विकास का हवाला देते हुए कहा कि इस दौरान देश के भीतर एक खास किस्म के पूंजीवाद का विकास हुआ है। इसी असमान विकास के चलते अमीरी-गरीबी की खाई बढ़ी है और भूमण्डलीकरण की नीतियां इसे और तेज रफ्तार से बढ़ा रही हैं।

उन्होंने कहा कि राष्ट्रीयताओं के संघर्षों का आज की दुनिया में अलग से कोई भविष्य नहीं है। उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं को अपने संघर्षों को सर्वहारा के नेतृत्व में व्यापक जनता के मुक्ति संघर्ष से जोड़ना ही होगा। इस संदर्भ में उन्होंने कश्मीर का जिक्र करते हुए कहा कि भारतीय शासक वर्ग के पास कश्मीर के अवाम को देने के लिए कुछ भी नहीं है; उसके पास कश्मीर की समस्या का कोई समाधान नहीं है। कश्मीरी अवाम को अपनी लड़ाई को पूरी भारतीय जनता की लड़ाई के साथ जोड़ना होगा।

प्रो. सिंह ने देश की मुख्य धारा की कथित वामपंथी पार्टियों की राजनीति के दिवालियेपन को उजागर करते हुए कहा कि ये पार्टियां सिर्फ सेक्युलरिज्म की चीख-पुकार मचा रही हैं लेकिन जिस जमीन से साम्प्रदायिक फासीवाद की राजनीति पनप रही है, जिन कारणों से इसे बढ़ावा मिल रहा है, उनके खिलाफ कोई आन्दोलन छेड़ने की कोशिश नहीं करतीं। जब तक पूंजीवाद के ढांचे को चुनौती नहीं पेश की जायेगी, और समाजवाद का क्रान्तिकारी विकल्प अवाम के सामने नहीं पेश किया जायेगा, तब तक सेक्युलरिज्म की झण्डाबरदारी सिर्फ एक पाखण्ड है।

व्याख्यान के बाद काफी देर तक प्रो. सिंह ने अनेक श्रोताओं के सवालों और जिज्ञासाओं के जवाब दिये। व्याख्यान में बड़ी संख्या में छात्र, बुद्धिजीवी, प्रबुद्ध नागरिक और सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता उपस्थित थे।

इससे पहले कार्यक्रम के संचालक सत्यम ने बताया कि राहुल फाउण्डेशन के संस्थापक अध्यक्ष **डा. महेश पाल सिंह** उन दुर्लभ कम्युनिस्ट बुद्धिजीवियों में से थे जो अविचल निष्ठा के साथ जनता के लिए जिये और मरे। छात्र जीवन से ही वे कम्युनिस्ट आन्दोलन के प्रति समर्पित रहे। प्रतिष्ठित किंग जार्ज मेडिकल कालेज के प्रोफेसर होते हुए भी उन्होंने मजदूरों जैसा जीवन बिताया, परिवार नहीं बसाया, निजी सम्पत्ति के नाम पर एक कौड़ी नहीं जोड़ी और अपना सर्वस्व आन्दोलन को समर्पित कर दिया। उन्होंने ही राहुल फाउण्डेशन का ढांचा खड़ा किया और इसकी कार्य-प्रणाली निर्धारित की। मधुमेह के गम्भीर रोगी 'कामरेड डाक्टर' 27 नवम्बर 1997 को आखिरी सांस लेने तक फाउण्डेशन की आत्मा बने रहे और आज भी हम उनकी स्पिरिट अपने भीतर महसूस करते हैं।

राहुल सांकृत्यायन स्मृति व्याख्यान माला के तहत चौथा व्याख्यान प्रख्यात मार्क्सवादी साहित्य चिन्तक **प्रो. मैनेजर पाण्डेय** को **'भूमण्डलीकरण और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद'** विषय पर 14 अप्रैल को देना था, लेकिन इसी दिन लखनऊ में मायावती की पर्दाफाश रैली के चलते मची अफरा-तफरी के कारण इसे स्थगित करना पड़ा। अब यह व्याख्यान कुछ माह बाद होगा।

प्रदर्शनियाँ और फिल्म शो

इस कार्यक्रम का एक प्रमुख आकर्षण थीं इस दौरान आयोजित प्रदर्शनियाँ। प्रख्यात चित्रकार **हरिपाल त्यागी** के 18 तैल चित्रों की प्रदर्शनी को काफी लोगों ने देखा। इसी के साथ राहुल फाउंडेशन की ओर से स्थापित समान्तर कला दीर्घा की भी शुरुआत हुई। युवा कलाकार **रामबाबू** के बनाये पचास से अधिक आकर्षक कविता पोस्टर तथा **'युद्ध और बच्चे'** शीर्षक कार्टून एवं कैरिकेचर प्रदर्शनी को भी लोगों ने खूब सराहा।

समारोह के दौरान रोज रात को फिल्मों का प्रदर्शन किया जाता था। ज्यादातर फिल्में युद्धोन्माद और साम्प्रदायिक जुनून के खिलाफ थीं। दिखाई गई फिल्में इस प्रकार थीं–**जंग और अमन** (आनन्द पटवर्धन), **जुनूं के बढ़ते कदम** और **जुल्मतों के दौर में** (गौहर रज़ा) और **आस्था के नाम पर** (पंकज शंकर)। इसके अलावा जर्मनी में फासीवाद के दौर में बनी तीन प्रसिद्ध कथाफिल्में **'भेड़ियों के बीच में'**, **'मौत मेरा पेशा है'** और **'कामेडियन हार्मोनिस्ट्स'** तथा रूसी क्रान्ति पर सेर्गेइ आइजेंस्ताइन की प्रसिद्ध फिल्म **'बैटलशिप पोतेमकिन'** भी दिखाई गईं।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा पाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।